जनवरी-जून, 2013
ISSN:2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

संयुक्तांकः 84-85

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ISSN No.: 2320-7736 (Print)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 84-85 (संयुक्तांक)
जनवरी-जून, 2013

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

1927 HRD/14—1A

1

एथनॉल का उत्पादन एवं उसकी बढ़ती उपयोगिता

**शिव प्रसाद, शीतल के. राधाकृष्णन,
नरेश कुमार सिंह एवं सुधा कन्नौजिया**

रसायन शास्त्र में ऐल्कोहॉल एक महत्वपूर्ण कार्बनिक यौगिक है। इसकी रासायनिक संरचना में आमतौर पर हाइड्रॉक्सिल कार्यात्मक समूह (OH), कार्बन परमाणु या हाइड्रोजन अथवा अन्य कार्बन अणुओं से जुड़े रहते हैं। अचक्रीय ऐल्कोहॉल वर्ग का सामान्य रासायनिक सूत्र ($C_n H_{2n+1} OH$) है। इसे सामान्यतः मादक पेय के रूप में मदिरा तथा रासायनिक नामकरण एथनॉल ($C_2 H_5 OH$) के नाम से भी जाना जाता है। हालांकि, ऐल्कोहॉल शब्द वास्तव में कार्बनिक रसायनों के एक पूरे समूह को संदर्भित करता है इन ऐल्कोहॉलिक कार्बनिक रसायनों में एथनॉल एक महत्वपूर्ण रसायन है। अन्य ऐल्कोहॉल समूहों में आमतौर पर वर्णित रासायनिक नाम मेथनॉल, प्रोपेनॉल एवं आइसोप्रोपेनॉल इत्यादि मुख्य है। वैज्ञानिक प्रकाशनों में इन महत्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थों की सटीक पहचान के लिए अंतरराष्ट्रीय रसायन नामकरण संघ में प्रयुक्त उर्युक्त नामकरण ही प्रयोग किए जाते हैं। कम औपचारिक अन्य संदर्भों में अक्सर इसको ऐल्कोहॉल समूह संगत शब्द ऐल्कोहॉल के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए मेथिल एल्कोहॉल, एथिल ऐल्कोहॉल या आइसो प्रोपिल ऐल्कोहॉल इत्यादि।

एथनॉल (एथिल ऐल्कोहॉल) एक तरल ज्वलनशील पदार्थ है जिसका क्वथनांक 78.4 डिग्री सेल्सियस होता है। एथनॉल के अलावा मेथनॉल (मेथिल ऐल्कोहॉल) ऐल्कोहॉलिक कार्बनिक पदार्थों में काफी महत्वपूर्ण है। एथनॉल के विपरीत, मेथनॉल विषैला होता है। मेथनॉल गंध और गुणों में इथेनॉल जैसा ही तरल है लेकिन इसका क्वथनांक एथनॉल की अपेक्षा थोड़ा कम (64.7 डिग्री सेल्सियस) होता है। औद्योगिक स्तर पर मुख्य रूप से एथनॉल एवं मेथनॉल, विलायक और ईंधन के रूप में काफी मात्रा में इस्तेमाल किए जाते हैं। मेथनॉल विषैला होने के कारण मादक पेय के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसकी अत्यंत कम मात्रा यानी एक घूंट (10 मिलीग्राम) आँखों के लिए काफी घातक सिद्ध हो सकती है यहाँ तक कि अंधापन भी पैदा कर सकती है। वहीं 30 मिलीलिटर मात्रा (एक द्रव औंस) का सेवन, तंत्रिका–तंत्र के लिए स्थायी रूप में घातक हो सकता है।

एथनॉल का ऐतिहासिक विवरण

प्रागैतिहासिक काल के पाए गए पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि हमारे पूर्वजों ने 10,000 ई.पू. पहले नवपाषाणी युग में ही किण्वित एथनॉल का मादक पेय के रूप में प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया था। कार्बन काल निर्धारण नमूनों के अनुसार मिश्र में 7000–4000 ई.पू. के बीच में किण्वित एथनॉल के साक्ष्य पाए गए हैं। इसी कड़ी में एथनॉल उत्पादन एवं उसमें उपयोग होने वाले उपकरणों के साक्ष्य चीन में भी पाए गए हैं। वहीं 4000 ई.पू. सुमेरियन सभ्यता यानी आज के आधुनिक ईराक क्षेत्र से प्राप्त पुरातात्विक अभिलेखों में भी मदिरा बनाने की प्रक्रिया एवं उससे होने वाली मादकता का उल्लेख मिलता है।

वैदिक कालीन साक्ष्यों से पता चलता है कि किण्वन और आसवन की तकनीकें उस युग में भी उपलब्ध थी। भारत में इसका प्रयोग सदियों से न केवल पेय पदार्थ के रूप में, बल्कि पूजा में भी इस्तेमाल होता रहा है। अधिकांश भारतीय पुरातन पांडुलिपियों में सोमरस के रूप में इसके उपयोग का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेदिक

I

संपादकीय

वैज्ञानिक पत्रिका "विज्ञान गरिमा सिंधु" का 84 - 85 वाँ अंक संयुक्तांक है जो पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

प्रस्तुत अंक में कीटनाशियों एवं पीड़कनाशिकों से होने वाले दुष्प्रभावों को रेखांकित किया गया है। जहाँ एक ओर मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर कीटनाशियों और पीड़कनाशियों के दुष्प्रभाव की प्रक्रिया से हमें अवगत कराया गया है वहीं इसके लिए हमारी बाध्यताओं को भी प्रकाश में लाया गया है। इनके द्वारा भोजन को विषाक्त किए जाने के विषय में डॉ. दीपक कोहली ने विवरण दिया है। पर्यावरण प्रदूषण करने वाले एक महत्वपूर्ण कारक कागज एवं कागज उद्योग के विनाशकारी पक्ष को लेखकद्वय कौशलेंद्र प्रताप मिश्र एवं अणिमा वशिष्ठ ने उजागर किया है।

कृषि के क्षेत्र में कुछ ज्ञानवर्धक लेख हमें प्राप्त हुए हैं जिनके शुष्क जलवायु के उन्नत तकनीकों द्वारा फलोद्यान लगाना, दलहनी फसलों की उपयोगिता एवं मृदा की उर्वरता बढ़ाने में उनका योगदान एवं महँगे अनाजों की अपेक्षा स्थानीय अनाजों की गुणवत्ता एवं उपयोगिता शामिल हैं। आजकल के विवादास्पद विषय बीटी बैंगन के पक्ष में डॉ. विनय कुमार सहित लेखक–त्रय ने सकारात्मक तथ्य प्रस्तुत किए है। इधर एथनॉल के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर शोधपूर्ण किरण एथनॉल की उत्पादन एवं उसकी बढ़ती उपयोगिता नामक लेख में दिया गया है।

हमारा प्रायः कोई भी अंक डॉ. दीपक कोहली द्वारा सपरिश्रम संकलित 'विज्ञान समाचार' के बिना अधूरा लगता है। इस अंक में भी उनके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अनेक स्रोतों से हमारे पाठकों के लिए रोचक–ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

आयोग सभी लेखकों के योगदान के लिए उनका अत्यंत आभारी हैं। आशा और अनुरोध है कि भविष्य में भी अपना मूल्यवान योगदान जारी रखेंगे।

(अशोक एन. सेलवटकर)
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"

जून, 2013
नई दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 84-85 (संयुक्तांक), जनवरी–जून, 2012

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर

सहयोग
श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल
वीरसिंह आर्य

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डॉ. धर्मेंद्र कुमार, स.नि.
श्री आलोक वाही
कलाकार
श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
डॉ. बी. के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	एथनॉल का उत्पादन एवं बढ़ती उपयोगिता	*शिव प्रसाद, शीतल के. राधाकृष्णन नरेश कुमार सिंह एवं सुधा कन्नौजिय*	1
2.	मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर कीटनाशियों एवं पीड़कनाशियों का दुष्प्रभाव	*राधव शैलेंद्र कुमार सिंह*	8
3.	दलहनी फसलें : मृदा उर्वरकता हेतु लाभकारी	*डॉ. आर. एस सेंगर एवं अमित कुमार*	17
4.	कीटनाशियों से भोजन में बढ़ता ज़हर	*डॉ. दीपक कोहली*	20
5.	पराजीनी बैंगन (बीटी बैंगन)	*डॉ. विजय कुमार मिश्र डॉ. डी. के द्विवेदी एवं डॉ. यू. एस. मिश्रा*	23
6.	भारत में कागज उद्योग एवं पर्यावरण प्रदूषण	*कौशलेंद्र प्रताप मिश्र एवं अणिमा वशिष्ठ*	29
7.	दुधारू गायों में पोषक तत्व का महत्व	*दीपक एस. भदौरिया*	33
8.	हरित भवन	*डॉ. दिनेश मणि*	36
9.	जलमुद्रण क्षेत्र में अभियांत्रिक कार्यकलाप	*डॉ. नवीन कुमार*	39
10.	क्रोकर : पक्षियों की तरह आवाज निकालने वाली मछली	*डॉ. परशुराम शुक्ल*	41
11.	वैदिक एवं आयुर्वेदिक काल में रसायन विज्ञान की उन्नत प्रौद्योगिकी	*डॉ. दुर्गादत्त ओझा*	44
12.	शुष्क जलवायु के फलोद्यान संस्थापन की उन्नत प्रौद्योगिकी	*डॉ. राजुलाल भारद्वाज*	49
13.	निद्रा : एक अध्ययन	*डॉ. जे. एल. अग्रवाल*	53
14.	खगोलीय पिंड अनुसंधान अभियान	*दीपक गुप्ता*	56
15.	जल संकट : कारण एवं निदान	*डॉ. नीरजा श्रीवास्तव*	59
16.	स्थानीय अनाज : स्वाद एवं स्वास्थ्य का खजाना	*डॉ. नवीन कुमार*	61
17.	विज्ञान समाचार	*डॉ. दीपक कोहली*	63
18.	कॉपरनिकस : प्राचीन काल का महान वैज्ञानिक	*डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*	70
	लेखक–परिचय		73
	आयोग के प्रकाशन		74–77

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in
कापीराइट © 2012
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

1927 HRD/14—1B

अध्यक्ष की कलम से...

वैज्ञानिक तथा शब्दावली आयोग की त्रैमासिक विज्ञान–पत्रिका **'विज्ञान गरिमा सिंधु'** का प्रकाशन दो अत्यंत उल्लेखनीय प्रयोजनों से प्रारंभ किया गया था। पहला प्रयोजन था– शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिंदी की वैज्ञानिक/तकनीकी शब्दावली के स्वीकरण तथा उसके उपयोग द्वारा शब्दावली का प्रयोग, प्रचारप्रसार और उस पर वैज्ञानिकों तथा विज्ञानलेखकों का अनुमोदन प्राप्त करना। दूसरा प्रयोजन था– हिंदी की विज्ञानपत्रिकाओं की अल्पता के परिप्रेक्ष्य में विज्ञानलेखकों को एक प्रामाणिक मंच प्रदान करना। हमारे लिए प्रसन्नता की बात है कि यह पत्रिका विगत 27 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है और इस के कारण अनेक वैज्ञानिक, विज्ञान के लेखक हिंदी में विज्ञानलेखन हेतु प्रोत्साहित तथा प्रवृत्त हुए हैं। प्रस्तुत अंक 'विज्ञान गरिमा सिंधु' का यह संयुक्तांक (84 - 85) इस श्रेणी में नवीनतम लेखों के साथ प्रकाशित हो रहा है। हमेशा की तरह उत्साहित लेखकों ने अपने विद्वत्तापूर्ण लेखन से पाठकों को लाभान्वित करने का प्रयास किया है। लेखकों से आशा है कि वह अपने विद्वतापूर्ण लेखों से आगे भी सहयोग देकर इस पत्रिका को और भी रोचक बनाएँगे।

शब्दावली आयोग के जीवविज्ञान एकक के वैज्ञानिक अधिकारी **श्री अशोक** सेलवटकर अपने नियत कार्यों के साथ ही इस पत्रिका का संपादन **मनोयोग से** करते आ रहे हैं, इसके लिए वे सराहना के पात्र हैं।

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
प्रधान संपादक
अध्यक्ष ,वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

जून, 2013
नई दिल्ली

चिकित्सा प्रणाली में एथनॉल औषधि–निर्माण का एक अभिन्न हिस्सा माना गया है। प्राचीन यूनानी धर्म–दर्शन में भी एथनॉल के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव के बारे में विस्तार से लिखा गया है। महान दार्शनिकों में से कई लोग इस विषय पर सकारात्मक राय रखते थे। महान दार्शनिक प्लेटो ने बीयर का आविष्कार किया, हालांकि एथनॉल को मादक पेय के रूप में इसके प्रयोग अथवा मादकता की उन्होंने आलोचना भी की। पूर्व में रोमन साम्राज्य के दौरान एथनॉल एवं अन्य मादक पेय पदार्थों के व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई।

मध्य युग के अंत में अधिकांश यूरोपीय देशों ने एथनॉल किण्वन और आसवन की विशिष्ट शैली विकसित कर ली थी। सत्रहवीं सदी के दौरान नैतिकता के मध्यस्थ चर्चों में एथनॉल का काफी मात्रा में उपयोग होने लगा था। कई चर्चों ने एथनॉल की विशेष रूप से प्रशंसा की। सदी के दौरान ही बड़े पैमाने पर अनाज से किण्वित एवं आसुत सुगंधित मदिरा ब्रिटेन में बेहद लोकप्रिय बन गई। वर्ष 1690 में ब्रिटिश संसद ने भी इसे प्रोत्साहित करने के लिए कानून पारित किया। इससे एथनॉल के उत्पादन और खपत में और भी वृद्धि हो गई। अठारहवीं सताब्दी कें आरंभ में ही सामाजिक अशांति और व्यापक स्वास्थ्य समस्याओं के चलते, इसके उपयोग को दोषी ठहराया गया। बड़े पैमाने पर एथनॉल के उपयोग से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ने लगी, मृत्यु दर इतनी अधिक हो गई कि लंदन की तेजी से बढ़ रही जनसंख्या स्थिर होने लगी। वर्ष 1736 और 1751 में पारित ब्रिटिश अधिनियमों के तहत उत्पादन और बिक्री को नियंत्रित एवं विनियमित करने के लिए एथनॉल पर कर लगा दिया गया।

अमेरिकी आविष्कारक सेम्यूएल मोरे (1824–1826) को मुख्यतः दुनिया का पहला एथनॉल (ऐल्कोहॉल) और तारपीन आधारित आंतरिक दहन इंजन बनाने के लिए जाना जाता है। जर्मन आविष्कारक निकोलस ओटो (1860) ने शुद्ध एथनॉल पर चलाने के लिए अपना पहला ऑटोमोबाइल बनाया। बाद के वर्षों में पेट्रोलियम आधारित ईंधन की खोज एवं उत्पादन में वृद्धि एवं इनका काफी हद तक सस्ता हो ना, ईंधन के रूप में एथनॉल और तारपीन के उपयोग पर विराम लगा दिया। उन्नीसवीं सदी के दौरान सुंयक्त राज्य अमेरिका में मकई द्वारा ऐल्कोहॉल के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। आदमी, औरत और बच्चे सभी ऐल्कोहॉल का अधिक मात्रा में सेवन करने लगे। हालात इतने खराब हुए कि पूरे राज्य में आंदोलन छिड़ गया और ऐल्कोहॉल के सभी रूपों पर प्रतिबंध लगाने की माँग की जाने लगी। इसी अवधि के दौरान ऐल्कोहॉल का काला बाज़ार भी बड़े पैमाने पर व्यापारिक आकर्षण का केंद्र बन गया। परिमाणतः परिस्थिति को देखते हुए आसवनी (डिस्टलीयरी) इकाइयों ने अपना उत्पादन बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। वर्ष 1920 और 1933 के दौरान पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका में एथनॉल का उत्पादन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया।

एथिल ऐल्कोहॉल उत्पादन

एथिल ऐल्कोहॉल (एथिनॉल) के उत्पादन के लिए मुख्यतः दो प्रक्रमों विशेषतः (1) जैविक किण्वन और (2) एथिलीन जलयोजन पेट्रोकेमिकल प्रक्रम का प्रयोग किया जाता है। दुनिया के अधिकांश भागों में औद्योगिक स्तर पर एथिनॉल का उत्पादन मुख्यतः जैविक किण्वन प्रक्रम द्वारा ही किया जाता है। वहीं संश्लिष्ट एथनॉल का उत्पादन विशेषतः एथिलीन जलयोजन पेट्रोकेमिकल प्रक्रम द्वारा किया जाता है। एथनॉल उत्पादन के दोनों प्रक्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:–

(1) एथनॉल उत्पादन का जैविक किण्वन प्रक्रम – जैविक किण्वन प्रक्रम एथनॉल उत्पादन की सबसे पुरानी एवं पारंपरिक विधि है। इस प्रक्रम में खमीर की कुछ जातियां चीनी, शीरा, फलों का रस अथवा अन्य शर्करायुक्त फसल जातियों के रसों में पाई जाने वाली ग्लूकोस ($C_6H_{12}O_6$) का उपयोग कर इसे एथनॉल (C_2H_5OH) में बदल देती है। इस प्रक्रम का अंतिम उत्पाद आसवन के बाद स्वच्छ एथनॉल के रूप में विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता है। वास्तव में जैविक किण्वन एक जैव–रासायनिक अभिक्रिया है। निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

$$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_2H_5OH + 2CO_2$$

ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी देशों में सदियों से बड़े पैमाने पर अनाज से किण्वित एवं ऑसुत सुगंधित मदिरा बनाने की यह अभिक्रिया बेहद लोकप्रिय रही है। दानों तथा कंद वाली शर्करायुक्त फलसों में स्टार्च प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिसे प्रायः एमिलेज एन्जाइम द्वारा ग्लूकोस ($C_6H_{12}O_6$) में परिवर्तित कर इसे जैविक किण्वन क्रिया द्वारा एथनॉल उत्पादन (आकृति 1) के लिए उपयोग में लाया जाता है।

हाल के वर्षों में एथनॉल सबसे महत्वपूर्ण वैकल्पिक तरल ईंधन संसाधन के रूप में उभरा है और इससे एथनॉल किण्वन अनुसंधान में तेजी आयी है। एथनॉल उत्पादन में सुधार लाने पर अनुसंधान पारिस्थितिक और आर्थिक दोनों कारणों से किया जा रहा है। फसल अवशेषों में उपस्थित सेल्यूलोस, हेमीसेल्यूलोस इत्यादि वास्तव में कार्बोहाइड्रेट अथवा शर्करा के बहुलक (पालीमर) होते हैं जिन्हें प्राथमिक उपचार एवं एन्जाइमी शर्करीकरण द्वारा एकल कार्बोहाइड्रेट अर्थात् साधारण शर्करा (ग्लूकोस, गलैक्टोस, मैनोस, जाइलोस एवं आरबीनोस) में परिवर्तित किया जा सकता है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि अधिकतर सूक्ष्मजीव, कार्बोहाइड्रेट के बहुलक जैसे स्टार्च (मंड) सेल्यूलोस तथा हेमीसेल्यूलोस से सीधे एथनॉल उत्पादन (किण्वन) में अक्षम होते हैं। अतः प्राथमिक उपाचरण एवं एन्जाइमी शर्करीकरण आवश्यक है। प्राथमिक उपचारण एवं एन्जाइमी शर्करीकरण प्रक्रम द्वारा प्राप्त साधारण शर्करा ही सूक्ष्मजीवी जैसे– यीस्ट एवं जीवाणुओं द्वारा एथनॉल उत्पादन हेतु सक्षम रूप से प्रयोग की जा सकती है। इस संपूर्ण प्रक्रम को आकृति 1 द्वारा दर्शाया गया है।

(2) एथनॉल के उत्पादन का एथिलीन जलयोजन पेट्रोरासायनिक प्रक्रम – एथनॉल उत्पादन का दूसरा माध्यम एथिलीन (C_2H_4) जलयोजन है जो सामान्यतः संश्लिष्ट एथनॉल के रूप में मुख्यतः औद्योगिक विलायकों और अन्य प्रकार के ऐल्कोहॉली रसायनों के निर्माण में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। एथनॉल उत्पादन के एथिलीन जलयोजन पेट्रोरासायनिक प्रक्रम में सामान्यतः अम्ल को एक उत्प्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह प्रक्रम दो चरणों में पूरा होता है। पहले चरण में एथिलीन (C_2H_4), सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) के साथ रासायनिक अभिक्रिया करके एथिल सल्फेट ($CH_3CH_2SO_4H$) का निमार्ण करती है। वहीं दूसरे चरण में एथिल सल्फेट रासायनिक अभिक्रिया के द्वारा एथनॉल और सल्फ्यूरिक अम्ल में जलयोजित हो जाता है। संश्लिष्ट एथनॉल उत्पादन के पूरे रासायनिक प्रक्रम को चरणबद्ध तरीके से रासायनिक अम्ल के माध्यम से इस प्रकार समझा जा सकता है–

पहला चरण : $C_2H_4 + H_6SO_4 \rightarrow CH_3CH_2SO_4H$

दूसरा चरण : $CH_3CH_2SO_4H + H_2O \rightarrow C_2H_5OH + H_2SO_4$

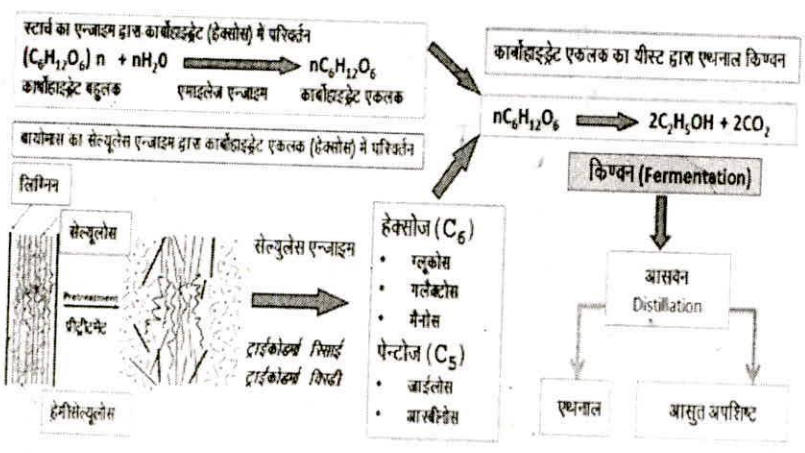

आकृति 1. स्टार्च (मंड) तथा फसल अवशेषों या बायोमास से एथनॉल उत्पादन का प्रक्रम

एथनॉल का वैश्विक उत्पादन

वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र, ब्राजील एवं यूरोपीय संघ, एथनॉल (एथिल ऐल्कोहॉल) के प्रमुख उत्पादक देश हैं। वैश्विक एथनॉल उत्पादन की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र पहले तथा ब्राजील दूसरे स्थान पर आता है। वर्ष 2009 में संपूर्ण एथनॉल उत्पादन में संयुक्त राष्ट्र तथा ब्राजील की कुल हिस्सेदारी लगभग 88 प्रतिशत थी। तीसरे स्थान पर यूरोपीयन संघ आता है। वहीं भारत का स्थान आठवें नंबर पर आता है जिसका अवलोकन सारणी 1 से किया जा सकता है।

सारणी 1. वर्ष 2009 में विभिन्न देशों द्वारा एथनॉल का वैश्विक उत्पादन

प्रमुख एथनॉल उत्पादक देश	उत्पादकता (मि. गैलन)
संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड स्टेट)	10,600.00
ब्राजील	6,577.89
यूरोपीय संघ	1,039.52
चीन	541.55
थाइलैंड	435.20
कनाडा	290.59
कोलंबिया	83.21
भारत	91.67
आस्ट्रेलिया	56.80
अन्य	247.27
कुल उत्पादन (मिलियन गैलन)	**19,534.99**

विगत दशकों में एथनॉल का उत्पादन निरंतर बढ़ा है। दुनिया के अधिकांश देशों ने वर्ष 2000 के बाद जीवाश्म ईंधन की खपत एवं प्रति बैरल डॉलर मूल्य में वृद्धि बढ़ते पर्यावरणीय दुष्प्रभाव तथा वायु–प्रदूषण की समस्याओं के कारण अपनी ईंधन नीतियों में बदलाव किए हैं और एथनॉल को ऑक्सीजिनेट ईंधन के रूप में अपनाया है। एथनॉल को ऑक्सीजिनेट ईंधन के रूप में उपयोग किये जाने की वजह से वैश्विक स्तर पर एथनॉल के उत्पादन में भी काफी तेजी से बढ़ोतरी हुई है जिसे आकृति 2 में देखा जा सकता है।

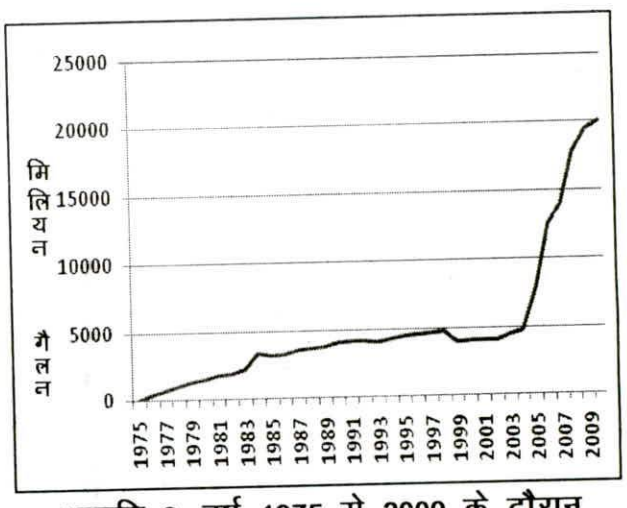

आकृति 2. वर्ष 1975 से 2009 के दौरान वैश्विक एथनॉल उत्पादन में वृद्धि

भारत में एथनॉल ऐल्कोहॉल का उत्पादन

भारत में एथिल ऐल्कोहॉल (एथनॉल) मुख्यतः गन्ने के शीरे से बनाया जाता है जिसका उपयोग घरेलू एवं औद्योगिक रासायनिक उत्पादों के निर्माण, चिकित्सा, औषधि निर्माण, जैविक उत्पाद तथा कुछ सीमा तक ऑसुत पेय पदार्थों के उत्पादन के लिए भी किया जाता है। अधिकांशतः उच्च गुणवता वाले ऐल्कोहॉली ऑसुत पेय पदार्थों का निर्माण, फलों एवं अनाज वाली फसलों विशेषतः जौ एवं मक्का इत्यादि से किया जाता है। भारत में वर्ष 1998–2007 के दौरान शीरे द्वारा निर्मित एथनॉल के उत्पादन, उपयोग एवं उसकी अतिरिक्त उपलब्धता को सारणी 2 में दर्शाया गया है।

सारणी 2. भारत में शीशे द्वारा निर्मित एथनॉल का उत्पादन, उपयोग एवं उसकी अतिरिक्त उपलब्धता

वर्ष–वार	उत्पादन (मिलियन लीटर)				
	एथनॉल उत्पादन	औद्योगिक उपयोग	पेय एथनॉल उपयोग	अन्य उपयोग	अतिरिक्ता उपलब्धता
1998–99	1411.8	534.4	5840	55.2	238.2
1999–00	1654.0	518.9	622.7	57.6	455.8
2000–01	1685.9	529.3	635.1	58.8	462.7
2001–02	1775.2	539.8	647.8	59.9	527.7
2002–03	1869.7	550.5	660.7	61.0	597.5
2003–04	1969.2	578.0	693.7	70.0	627.5
2004–05	2074.5	606.9	728.3	73.5	665.8
2005–06	2187.0	619.0	746.5	77.2	742.3
2006–07	2300.4	631.4	765.2	81.0	822.8

एथनॉल की उपयोगिता

मनुष्य द्वारा किण्वित–ऑसुत एथनॉल का उत्पादन एवं इस्तेमाल सदियों से चला आ रहा है। विगत वर्षों में एथनॉल की बड़े पैमाने पर उपयोगिता बढ़ी है। विविध उपयोगों के कारण यह सुख और समस्याओं दोनों का बहुत लंबे समय से साक्षी भी रहा है। कई मायनों में आम लोगों की धारणा रही है कि एथनॉल समाज के विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है लेकिन इसका एक साकारत्मक पहलू भी है। यह हम पर निर्भर करता है एथनॉल से सुखद लाभ के लिए हम कैसा कुशल प्रबंधन एवं उपयोगी दृष्टिकोण अपनाते है। ईंधन से लेकर औद्योगिक उत्पादों तक इसकी उपयोगिता की एक विस्तृत श्रृंखला है। यह विभिन्न प्रकार के घरेलू एवं औद्योगिक रासायनिक उत्पादों के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है। आज एथनॉल, आधुनिक दवा उत्पादों, जैविक प्रतिक्रियाओं के उत्पादों, ऑसुत पेय पदार्थों के उत्पादन के लिए आवश्यक ही नहीं, वरन् काफी महत्वपूर्ण साबित होता जा रहा है। मुख्यतः एथनॉल (एथिल ऐल्कोहॉल), मेथेनॉल (मेथिल ऐल्कोहॉल) तथा अनेकों प्रकार के अन्य एल्कोहॉली यौगिकों जैसे– प्रोपिल एल्कोहॉल (प्रोपेनॉल), आइसो प्रोपिल ऐल्कोहॉल आदि, भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं के लिए काफी महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। यह उत्पाद शुल्क के माध्यम से दुनिया भर की सरकारों के लिए राजस्व का एक बड़ा स्रोत भी रहा है।

एथनॉल आधारित रसायानों का औद्योगिक उपयोग

एथिल ऐल्कोहॉल औद्योगिक रसायनों के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है। ऐल्कोहॉली रसायनों में ऐसीटिक अम्ल, एसीटोन, एथिट एसीटेट, ब्यूटेनॉल, ब्यूटेडीन, ऐसीटिक एनहाइड्राइड, वाइनिल ऐसीटेट, एमईजी और स्टीरीन आदि औद्योगिक उपयोगों के लिए प्रमुख है। पीवीसी सिंथेटिक रबर उद्योग, टैक्सटाइल और सिंथेटिक फाइबर, रासायनिक कीटनाशियों फार्मास्यूटिकल्स, सिंथेटिक पेंट एवं डाई उत्पादन जैसे उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में बड़ी मात्रा में एथनॉल की आवश्यकता होती है। रसायन उद्योगों में एथनॉल की वार्षिक माँग लगभग 1000 लाख लिटर से भी ज्यादा होती है। एथनॉल का उपयोग विलायक के रूप में व्यापक स्तर पर किया जाता है। यह अपेक्षाकृत सुरक्षित है और कई प्रकार के कार्बनिक यौगिक जो पानी में अविलेय होते हैं, वे इसमें विलेय हैं। उदाहरण के लिए यह कई इत्र और सौंदर्य प्रसाधन सामग्रियों में सुरक्षित विलायक के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रिंटिंग, रंग–रोगन एवं स्याही बनाने में इसका बड़ा योगदान है।

एथनॉल का चिकित्सीय उपयोग

एथनॉल चिकित्सा के क्षेत्र में एक अनिवार्य विलायक तथा विभिन्न प्रकार की औषधियों के निर्माण में उपयोग होने वाला एक महत्वपूर्ण रसायन है। इसके साथ ही होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा उपचार प्रणाली में एथनॉल, औषधि निर्माण का एक अभिन्न अंग है। अधिकांश औषधीय सीरप विशेषतः कफ सीरफ, जोड़ों का दर्द, चयापचय क्षमताओं के पुनःसक्रियण, चिकित्सा प्रतिरक्षा प्रणाली की रक्षात्मक क्षमता बढ़ाने वाली औषधियाँ एथनॉल के बिना प्रभाव नहीं बन पाती। प्राथमिक चिकित्सा प्रयोजनों के लिए प्रतिरोधी (एंटीसेप्टिक) के रूप में एथनॉल एवं आइसो प्रोपेनॉल का उपयोग सामान्य बात है। इस प्रकार एथनॉल जीवाणुरोधक के रूप में अधिकांश जीवाणुओं, कवकों और कई विषाणुओं के प्रति विसंक्रामक एवं अत्यंत प्रभावी है। भारत फार्मेसी ग्रेड एथनॉल का सबसे बड़ा उत्पादक तथा अपनी फार्मेसियों और अस्पतालों की जरूरतों की आपूर्ति के साथ कई अन्य राष्ट्रों जैसे– यूक्रेन, पूर्वी यूरोप के देशों में विसंक्रामक एथनॉल का विश्वसनीय और शुंद्धता की गारंटी के साथ निर्यातक भी है।

मादक पेय पदार्थों के निर्माण में उपयोग

एथिल ऐल्कोहॉल से मादक पेय पदार्थों का निर्माण भी एक आकर्षक विविधीकरण है। मादक पेय पदार्थों में विशेषतः ब्रैंडी, व्हिस्की, रम, जिन, वोदका आदि की देश में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी बड़ी माँग है। भारत में भी पेय प्रयोजन उद्देश्यों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली एथनॉल का निर्माण औद्योगिक स्तर पर किया जाता है।

एथनॉल एक तरल वैकल्कि ईंधन

ऊर्जा संसाधनों में जीवाश्म ईंधन प्रमुख संसाधन है। परिवहन से लेकर औद्योगिक, कृषि, मशीनरी तथा विभिन्न प्रकार के संयत्रों के संचालन हेतु गैसोलिन एवं पेट्रोलियम बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक जीवन की समरसता पूरी तरह से जीवाश्म ईंधन पर टिकी हुई है। विगत दशकों में जीवाश्म ईंधन की खपत एवं प्रति बैरल डॉलर मूल्य में वृद्धि, बढ़ते पर्यावरणीय दुष्प्रभाव तथा वायु प्रदूषण की समस्याएं बढ़ी है। जीवाश्म ईंधन दहन से वातावरण में 21–24 प्रतिशत तक हरितगृह गैसों का सांद्रण बढ़ा है जो वैश्विक ऊष्मण (ग्लोबल वार्मिंग) एवं जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। इनका असर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई आपदाओं के रूप में सामान्य जनजीवन पर पड़ा है।

रासायनिक दृष्टिकोण से एथनॉल (इथाइल ऐल्कोहॉल) एक ऑक्सीजन युक्त ईंधन है जिसमें भार के अनुसार 37 प्रतिशत ऑक्सीजन पाई जाती है जो पेट्रोल ईंधन दहन क्षमता को बढ़ाकर वायुमंडल में उत्सर्जित प्रदूषण को 33 प्रतिशत तक कम करने में सक्षम एवं प्रदूषण नियंत्रण में सहायक है। इसे वैकल्पिक ईंधन के रूप में पेट्रोल के साथ 10 से 20 प्रतिशत तक मिश्रित (गैसोहोल) के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इससे न केवल वायु प्रदूषण नियंत्रण होगा बल्कि वैश्विक ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन में कमी के साथ स्वच्छ विकास तंत्र (सी.डी.एम.) को भी बढ़ावा मिलेगा।

चित्र 3. एथनॉल उत्पादन में प्रयुक्त संयत्र

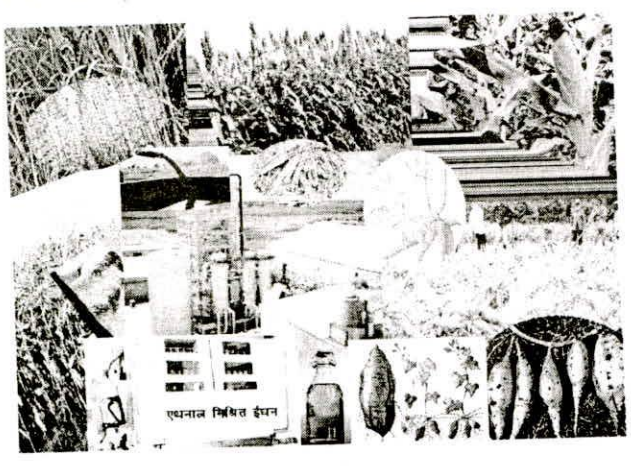

(1) मक्का से एथनॉल – संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का से एथनॉल का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। दुनिया के प्रमुख एथनॉल उत्पादक देशों में यह सबसे बड़ा एथनॉल उत्पादक (2009 दुनिया की फसलों का लगभग 40 प्रतिशत) देश है। लोगों का मानना है कि विशेषतः अमेरिका में मक्का द्वारा एथनॉल उत्पादन के कारण खाद्य पदार्थों की कीमतों में इज़ाफा हुआ है। विश्व स्तर पर अमेरिका मक्का उत्पादन में सबसे अग्रणी देश है जहाँ मक्का भोज्य पदार्थ के रूप में कम, लेकिन मांस उत्पादन हेतु पशुचारे के रूप में अधिक उपयोगी रहा है। भारत सहित अन्य विकासशील राष्ट्रों में मक्का भोज्य सामग्रियों में प्रमुख स्थान रखता है। यह सर्वथा अनुचित होगा कि ऊर्जा जरुरतों को पूरा करने के लिए मक्का एवं अन्य खाद्य पदार्थों को ईंधन हेतु एथनॉल उत्पादन के उपयोग में लाया जाए जबकि इसके लिए अनेक संसाधन पहले से ही उपलब्ध हैं।

(2) गन्ना या चीनी उत्पाद विशेष – ब्राजील, पूरी दुनिया में गन्ने से एथनॉल उत्पादन का प्रमुख उत्पादक देश है क्योंकि वहाँ चीनी की अतिरिक्त मात्रा एथनॉल उत्पादन के लिए पूरी तरह से उपलब्ध है। ब्राजील में वर्ष 1976 के बाद एथनॉल के साथ गैसोलीन मिश्रण ईंधन अनिवार्य कर दिया गया। भारत में गन्ने से चीनी का उत्पादन देश की खपत एवं माँग के अनुरूप है। हमारे यहाँ मुखतः गन्ने से चीनी उत्पादन के बाद शीरे की अतिरिक्त मात्रा डिस्टिलरी में एथनॉल के उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती है जो हमारी घेरलू एवं औद्योगिक माँग के लिए पर्याप्त है।

(3) कसावा से एथनॉल उत्पादन – कसावा एक कंद फसल है जिसे टैपिओका के नाम से भी जाना जाता है। यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की महत्वपूर्ण खाद्य फसलों में से एक है। यह दुनिया के 102 देशों में उगाया जाता है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों में कृषि अर्थव्यवस्था व्यापारिक फसल के रूप में उगाई जाती है। खाद्य प्रसंस्करण उत्पादों और उत्पादन केंद्रों में विविध उपयोग

स्टार्च, साबूदाना, छील, साबूदाना चिप्स तथा आटे आदि के उत्पादन हेतु कसावा का व्यावसायिक रूप से उपयोग किया जाता है। कसावा में विलेय कार्बोहाइड्रेट की मात्रा चावल और मक्का की तुलना में 25 प्रतिशत अधिक पाई जाती है। कसावा में स्टार्च (मंड) की उत्पादकता अधिक होने के कारण एथनॉल उत्पादन का एक अच्छा स्रोत है।

(4) शकरकंद से एथनॉल उत्पादन – शकरकंद एक बारहमासी तथा व्यापक रूप से उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की महत्वपूर्ण पूरक खाद्य फसलों में से एक है। एशिया में चीन इसका सबसे बड़ा उत्पादक देश है। जापान, वियतनाम, भारत, इंडोनेशिया, कोरिया और संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में इसकी खेती की जाती है। भारत में मुख्य रूप से उड़ीसा, बिहार, उत्तरप्रदेश और उत्तरी केरल के कुछ हिस्सों में इसकी खेती की जाती है। स्टार्च और किण्वन उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। आमतौर पर सस्ता और प्रतिस्पर्धी लागत कम होने के कारण एथनॉल उत्पादन के लिए एक अच्छा विकल्प है।

(5) फसल अवशेषों की उपलब्धता एवं उत्पादन – एक आंकलन के अनुसार, देश में वर्ष 1996–97 में कुल फसल अवशेषों की उपलब्धता एवं उत्पादन 626.5 मि. टन तथा गैर–चारा अवशेषों की उपलब्धता एवं उत्पादन 325.3 मि. टन थी। वहीं वर्ष 2010 तक कुल फसल अवशेषों की उपलब्धता एवं उत्पादन 840.6 मि. टन तथा गेर–चारा अवशेषों की उपलब्धता एवं उत्पादन 450.7 मि. टन होने का अनुमान था। आने वाले समय में फसल अवशेषों की मात्रा और बढ़ेगी। विगत वर्षों में पंजाब, हरियाणा एवं अन्य राज्यों में फसल अवशेषों को खेत में जलाने से कई समस्याओं विशेषतः वायु–प्रदूषण का सामना करना पड़ा है। इस अतिरिक्त गैर–चारा फसल अवशेषों के उत्पादन के लिए एथनॉल का प्रयोग किया जा सकता है।

भविष्य में ई.बी.पी. (एथनॉल ब्लेंडेड पेट्रोल) कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए वैकल्पिक स्रोतों की दक्षता बढ़ानी होगी। शर्करायुक्त ज्वार जातियां, चुकंदर, टैपिओका एवं शकरकंद इत्यादि एथनॉल (एथल एथनॉल) उत्पादन के लिए एक सक्षम विकल्प के रूप में कई देशों में एथनॉल उत्पादन हेतु प्रयोग की जा रही है। इसके अलावा फसल एवं अन्य बायोमास अवशेष पृथ्वी पर सबसे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनसे प्राप्त शर्करा का सूक्ष्मजीवी किण्वन प्रक्रम द्वारा एथनॉल उत्पादन हेतु उपयोग किया जा सकता है। हांलाकि इस प्रक्रम की उत्पादन लागत, अन्य विकल्पों की प्रतिस्पर्धी उत्पादन लागत से थोड़ी अधिक है लेकिन आने वाले समय में वह प्रक्रिया तकनीकी सुधार एवं अनुसंधान से सस्ती हो सकती है। खाद्य निगमों में भंडारण के दौरान खराब हो गए हजारों टन अनाज, जो खाने योग्य नहीं रह जाते, जिनकी बाज़ार में कोई कीमत नहीं होती, इन अयोग्य खाद्यानों को एथनॉल उत्पादन में लिया जा सकता है। भविष्य में इन संसाधनों से एथनॉल का उत्पादन ऊर्जा–उपलब्धता में सुधार तथा वायु प्रदूषण कम करने में सहायक हो सकता है।

○○○

2

मानव–स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर कीटनाशियों एवं पीड़कनाशियों का दुष्प्रभाव

राघव शैलेंद्र कुमार सिंह

कीटनाशी एवं पीड़कनाशी क्रमशः कीटों (insects) एवं पीड़कों (pests) के नियत्रंण के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। यदि इनका प्रयोग ठीक ढंग और उचित प्रकार के उपकरणों द्वारा किया जाता है तो ये पर्यावरण और मानव जाति के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। अमूमन कृषक–वर्ग सोचते हैं कि ये दवाएं सिर्फ हानिकारक कीट–पतंगों को मारकर उपज बढ़ाती हैं और तात्पश्चात् वातावरण में नष्ट हो जाती हैं। मगर वास्तव में ऐसा होता नहीं है। ये दवाएं पूरी तरह से नष्ट नहीं होती तथा खाद्यानों में प्रेवश कर जाती हैं। जब मनुष्य इन खाद्यानों का उपयोग करता है तो उनका उस पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

कीटनाशी एक रसायन है जिसका प्रयोग पौधों का भक्षण करने वाले कीड़ों को मारने के लिए किया जाता है। यद्यपि टिड्डियाँ और दूसरे कीड़े खाद्य आपूर्ति के प्रति बहुत विनाशकारी हो सकते हैं। कीटनाशी हानिकारक स्वास्थ्य प्रभावों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं, पर्यावरण के लिए अहितकर होते हैं और पौधों की वृद्धि को भी रोकते हैं। सौभाग्यवश ऐसे कीटनाशियों को विकसित करने के लिए कई प्रयास जारी हैं जो नुकसानदेह कीड़ों के प्रति प्रभावी होते हैं और पौधों, जानवरों और मनुष्यों के प्रति नुकसानरहित होते हैं। अच्छी तरह से इस्तेमाल करने पर पौधा भक्षण करने वाले कीड़ों से रक्षा कर कीटनाशी पौधों के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। फिर भी, कुछ कीटनाशियों का अत्यधिक प्रयोग, पौधों के प्रति पादप–आविषालु (phytotoxic) होकर उनकी वृद्धि को रोक सकता है।

कीटों की संख्या में कमी करने के लिए ऐसे कीटनाशियों का निर्माण किया जाता है जो पौधों पर अपना गुजारा करते हैं। कुछ कीटनाशी कीटों का विनाश करते हैं जबकि कीटनाशियों की अन्य किस्में या तो कीटों की प्रजनन क्षमता को नष्ट करते हैं अथवा कीटों की वृद्धि में बाधक बनती हैं। दुर्भाग्यवश, कई नुकसानदायक कीड़े कीटनाशियों से अप्रभावित होकर बढ़ते हैं। कीटनाशियों की कुछ किस्मों – यह निश्चय करना मुश्किल है कि किस जानवर को नुकसान पहुँचेगा। छोटे स्तनधारी, पक्षी और लाभदायक कीड़े कभी–कभी कीटनाशियों द्वारा मारे जाते हैं। विशालकाय वन्य प्राणी और मछलियों पर इनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रत्यक्ष संसर्ग के नुकसानदायक प्रभावों के अलावा, कीटनाशी मनुष्यों के भोजन में भी जाकर मिल जाते हैं।

कीटनाशी प्रायः उन क्षेत्रों में चले जाते हैं जोकि अभीष्ट नहीं होते हैं। कारण यह है कि कीटनाशियों का छिड़काव बहुधा प्रधूलकों से किया जाता है और वायु कीटनाशियों की फुहार को अवांछित दिशाओं में बहाकर ले जाती है। कीटनाशी उस क्षेत्र को तुरंत नहीं छोड़ता है जहाँ पर इसका छिड़काव किया जाता है। कालांतर में कीटनाशी इकट्ठा होते रहते हैं और दूसरे रसायनों के साथ मिलकर और अधिक नुकसानदेह रसायनों का निर्माण करते हैं। ये रसायन जलापूर्ति में जाकर मिल जाते हैं और मनुष्यों में प्रतिकूल स्वास्थ्यगत समस्याएं पैदा करते हैं। फिर भी, कीटनाशियों की कुछ किस्में दूसरी जातियों को नुकसान नहीं पहुँचाती।

मनुष्यों के स्वास्थ्य पर कीटनाशियों के परिणाम प्रयुक्त कीटनाशी के किस्म पर निर्भर करते हैं। सन् 1940 से डी.डी.टी. (DDT) एक लोकप्रिय कीटनाशी था, किंतु पक्षियों को इससे विस्तृत नुकसान पहुँचा। यह कीटनाशी पार्किसन रोग में वृद्धि से भी जुड़ा हुआ है। हालांकि इस कीटनाशी पर प्रतिबंध लगा दिया गया है, परंतु कुछ फार्म इसे अभी भी आजमाते हैं।

डिक्लोरवस (Dichlorvos) कीटनाशी चर्मगत समस्याएं पैदा कर सकता है यदि उसका चर्म के साथ दीर्घ समय तक संपर्क बना रहे। यह कीटनाशी उत्तेजक जैसा काम करता है और खुजली पैदा करता है। डिक्लोरवस में पाया जाने वाला ईस्टर फॉस्फेट इस तरह की आविषालुता से तंत्रिका तंत्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। यदि दीर्घ काल तक खुला रखा जाए तो यह जहरीला भी हो सकता है।

स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करने वाले दो अन्य प्रकार के कीटनाशी लिन्डेन और मेथॉक्सीक्लोर हैं। लिन्डेन के अत्यधिक उपयोग से लिवर और किडनी में विकार आ जाते हैं। मेथॉक्सीक्लोर का अत्यधिक उपभोग जनन–तंत्र में अव्यवस्था से जुड़ा हुआ है।

पीड़कनाशी रसायनें का स्वास्थ पर दुष्प्रभाव

पीड़कनाशी रसायन हानिकारक कीटों को मारने के लिए होते हैं पर कुछ कीटनाशी मनुष्यों के स्वास्थ्य पर असर डाल सकते हैं। अस्वस्थता पैदा होने की संभावना पीड़कनाशी रसायनों के किस्म, प्रयुक्त उत्पाद में सन्निहित रसायनों के अलावा पीड़कनाशियों की कितनी मात्रा का कितने समय तक प्रयोग किया गया है, इन तथ्यों पर भी निर्भर करता है। बहुधा पीड़कनाशी तंत्रिका तंत्र (हमारे शरीर में वह प्रणाली जो हमारी तंत्रिकाओं और मांसपेशियों को नियंत्रित करती है) को प्रभावित करती है। "पीड़कनाशी" शब्द रसायनों या उत्पादों के एक बहुत विस्तृत और विभिन्न समुदायों का वर्णन करता है। पीड़कनाशी रसायनों के अंतर्गत आवासीय परिसर में पाए जाने वाले खटमलों, तिलचट्टों, छिपकलियों, चींटियों, दीमकों, मधुमक्खियों तथा चूहों को मारने वाली दवाइयाँ भी शामिल हैं। प्रयुक्त किए गए उत्पादों के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करना बहुत जरूरी है। पीड़कनाशी संपर्क के कुछ स्वास्थ्य–दुष्प्रभाव संपर्क के तुरंत बाद भी हो सकते हैं। कुछ लक्षण संपर्क काल के कई धंटे बाद हो सकते हैं। अन्य प्रभावों, जैसे– कैंसर का वर्षों तक अनुभव नहीं किया जा सकता।

पीड़कनाशी अनावरण के कुछ लक्षण अपने आप चले जाते हैं। जैसे ही अनावरण समाप्त होता है, दूसरे लक्षण कुछ समय के बाद चले जाते हैं। नियमित आधार पर पीड़कनाशी रसायनों से अनवरित लोगों के लिए दीर्घकालीन स्वास्थ्य की समस्याएं चिंता का विषय होती हैं। गर्भवती या स्तन–पान कराने वाली महिलाओं को पीड़कनाशी रसायनों से काम करने के पहले डॉक्टर से अपना परीक्षण करवाना चाहिए क्योंकि कुछ पीड़कनाशी रसायन गर्भ में पल रहे बच्चे अथवा स्तन–पान करने वाले शिशुओं के लिए नुकसानदायक सिद्ध हो सकते हैं

पीड़कनाशी रसायन हमारे शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं?

मिश्रण तैयार करने, घोल बनाने, इस्तेमाल करने अथवा सफाई के दौरान पीड़कनाशी रसायन हमारे शरीर के अंदर प्रवेश कर जाते हैं। सामान्यतः तीन तरीकों से कोई रसायन अथवा पदार्थ हमारे शरीर के अंदर प्रवेश कर सकता है–

(i) त्वचीय (चर्म के माध्यम से अवशोषण) – कार्य की अधिकांश स्थितियों में, चर्म से होकर अवशोषण पीड़कनाशी अनावरण का सबसे आम रास्ता है। मिश्रित करने, लाने–ले जाने या पीड़कनाशी का इस्तेमलाल करते समय लोग छीटें या फुहारे मारने से भी अनावरित हो सकते हैं।

(ii) अंतःश्वसन (फेफडों से होकर) – पाउडर, वायुवाहित लघु बूंदों (फुहारों) या भाप के नजदीक काम करने से अंतःश्वसन होता है। निम्न–दाब से खतरा कुछ कम रहता है क्योंकि अधिकांश लघु बूंदें ज्यादा बड़ी होने के कारण अधिक देर तक हवा में टिकी नहीं रह सकती है। उच्च दाब के साथ पीड़कनाशी का अनुप्रयोग या कूहायन (फॉगिंग) यंत्र का इस्तेमाल

संकट बढ़ा सकते हैं क्योंकि बूंदें छोटी होने के कारण हवा में अधिक दूरी तक जा सकती है।

(iii) अंतर्ग्रहण (मुख से) – हालांकि अंतर्ग्रहण अनावरण का एक कम सामान्य तरीका है, परंतु ऐसा होने पर यह सर्वाधिक गंभीर विषाक्तता का कारण हो सकता है। अनजाने में लोगों द्वारा बिना लेबल लगी बोतलों, पेय कपों या मीठे पेय के डिब्बों में रखे हुए पीड़कनाशी रसायनों के पीने के बारे में कई रिपोर्ट आती रहती है। जो मजदूर पीड़कनाशी उठाते–ले जाते, संभालते हैं, अनजाने में खाते या धूम्रपान करते समय वे यदि ठीक से हाथ नहीं धोते तो यह आविष उनके मुख के अंदर जा सकता है।

पीड़कनाशी रसायन हानिकारक जीवों को नष्ट करने के लिए होते हैं और चूंकि उनके कार्य का तरीका किसी एक जाति के प्रति सुनिश्चित नहीं रहता है, इसलिए वे प्रायः कीटों से भिन्न दूसरे जीवों (मानव आदि) को भी मारते अथवा नुकसान पहुँचाते हैं। बच्चे, युवा वर्ग या कोई विकसित जीव पीड़कनाशी के दुष्प्रभाव से बच नहीं पाते हैं। विकास/परिवर्धन के दौरान अनावरण का अत्यल्प स्तर भी स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। पीड़कनाशी का अंतर्ग्रहण तंत्रकीय स्वास्थ्य प्रभावों, जैसे– स्मरण–शक्ति की कमी, सहयोग की कमी, उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया में ह्रासित वेग, दृश्य क्षमता में कमी, परिवर्तित या अनियंत्रित मूड और सामान्य बर्ताव और घटी हुई गतिपरक दक्षता जैसे विकार पैदा कर सकता है। दूसरे संभाव्य, स्वास्थ्य प्रभावों में दमा, प्रत्यूर्जता (allergies), अतिसंवेदनशीलता शामिल है – पीड़कनाशी कैंसर, हॉर्मोनों के विघटन, पुनरुत्पादन और भ्रूण–विकास की समस्याओं से भी जुड़ा हुआ है।

पीड़कनाशी रसायनों के संरूपण में "सक्रिय" और "निष्क्रिय" दोनों ही संघटक सन्निहीत हैं। सक्रिय संघटक वे हैं– जो पीड़कों को मारते हैं और निष्क्रिय संघटक– सक्रिय संघटकों की मदद करते हैं ताकि वे अधिक सुचारू रूप से काम कर सकें। इन निष्क्रिय संघटकों का परीक्षण आद्योपांत सक्रिय संघटकों की तरह नहीं किया जा सकता और ये उत्पाद लेबलों पर विरले ही प्रकट होते हैं। विलायक, जोकि अधिकांश पीड़कनाशी रसायनों के संरूपण में निष्क्रिय संघटक होते हैं। यदि चर्म द्वारा शोषित या मुख द्वारा अंतर्गृहीत कर लिए जाएं तो वे विषाक्त हो सकते हैं।

पीड़कनाशी रसायनों के पर्यावरणीय प्रभाव

पीड़कनाशी रसायनों के पर्यावरणीय प्रभाव प्रायः अनुमानित प्रभाव से ज्यादा होते हैं। छिड़काव किए गए कीटनाशियों का 98% से ज्यादा और शाकनाशी का 95% उनके लक्षित वर्गों जैसे – वायु, जल, तली तलछट और भोजन से भिन्न गंतव्यों तक पहुँचते हैं। यदि पीड़कनाशी रसायनों के प्रयोग से लाभ हो सकता है तो इसका अनुचित प्रयोग प्रतिकूल होकर पीड़कनाशी के प्रतिरोध को बढ़ाकर पीड़कों के प्राकृतिक दुश्मनों का सफाया कर देते हैं।

पीड़कनाशी रसायनों की वह मात्रा जो कि अभीष्ट प्रयोग क्षेत्र से प्रवजन करती है, किसी खास रसायन के गुणों से प्रभावित होती है– मिट्टी से बँधने के लिए इसका झुकाव, इसका वाष्प–दबाव, इसकी जलीय विलेयता और कालक्रम में विघटित होने पर इसका प्रतिरोध। मिट्टी में उपस्थित गुणों जैसे कि इसका गठन, पानी धारण करने की इसकी क्षमता और इसमें शामिल कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पीड़कनाशी रसायनों की उस मात्रा को प्रभावित करती है जोकि उस क्षेत्र को छोड़ते हैं।

पीड़कनाशी वायु–प्रदुषण में योगदान कर सकते हैं। पीड़कनाशी रसायन धीरे–धीरे निकलता है जब वायु में कणों के रूप में लंबित पीड़कनाशी रसायन, संभवतः प्रदूषित होकर वायु द्वारा दूसरे क्षेत्रों की ओर ले जाए जाते हैं। फसलों में प्रयुक्त होने वाले पीड़कनाशी रसायन बाष्पीकृत हो सकते हैं और निकटवर्ती क्षेत्रों में वायु द्वारा बहकर वन्य जीवों के लिए संकट बन जाते हैं। प्रयोग के समय मौसम की स्थितियों के साथ–साथ तापक्रम और आपेक्षिक आर्द्रता वायु में पीड़कनाशी रसायनों के फैलाव को बदलते हैं। इसके अलावा छिड़के गए पीड़कनाशी रसायनों की लघु बूँदें वायु के माध्यम से दूसरे क्षेत्रों की ओर जा सकती हैं। पीड़कनाशी

उन कणों से चिपक सकते हैं जोकि धूल कणों की तरह वायु में बहते हैं। भू–छिड़काव वायु–छिड़काव की अपेक्षा कम पीड़कनाशी रसायनों का अपवाह (drift) पैदा करता है। मिट्टी को धूमिल करने के लिए खेतों में छिड़के गए पीड़कनाशी रसायन बाष्पशील कार्बनिक यौगिक नामक रसायन दे सकता है जोकि दूसरे रसायनों से प्रतिक्रिया कर क्षोभमंडलीय ओजोन नामक एक प्रदूषक बनाता है। पीड़कनाशी का प्रयोग संपूर्ण क्षोभमंडलीय ओजोन स्तरों के करीब 6% का हिसाब रखता है।

पीड़कनाशी रसायनों के अवशेष वर्षा और भूमि जल में पाए गए हैं। जलीय तंत्रों पर पीड़कनाशी रसायनों के प्रभाव प्रायः जलीय विज्ञान अभिगमन प्रतिरूप का उपयोग करके अध्ययन किया जाता है। चार प्रमुख रास्तों के माध्यम से पीड़कनाशी जल के अंदर पहुँच जाते हैं – छिड़कने पर यह अभीष्ट क्षेत्र के बाहर अपवाह कर सकता है, मिट्टी में रिसकर या घोल बनाकर अलग हो सकता है, वाह के रूप में यह भूमि जल के साथ बह सकता है या उपेक्षा करने पर यह छलक सकता है। मिट्टी का अपरदन करके यह पानी तक जा सकता है। निम्न कारक जल को संदूषित करने के लिए पीड़कनाशी रसायनों की क्षमता को प्रभावित करते हैं– जल में इसकी विलेयता जलाशय आदि और प्रयुक्त जगह के बीच दूरी, मौसम, मिट्टी की किस्म, विकसित फसल की उपस्थिति और रसायनों को इस्तेमाल करने के लिए प्रयुक्त विधि है।

डी.डी.टी. से प्रभाव पार्किन्सन रोग से जुड़ा हुआ था। पयार्वरण और लोगों पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के कारण इस पीड़कनाशी पर सन् 1972 में प्रतिबंध लगा दिया, लेकिन प्रतिबंध के बावजूद, कुछ अन्य पीड़कनाशी रसायनों का प्रयोग जारी है। सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करने पर भी पीड़कनाशी रसायन पेयजल स्रोतों मे वाह के रूप में अपना रास्ता बनाते रहते हैं। निम्नलिखित कुछ अधिक प्रचलित पीड़कनाशी रसायनों की सूची और इन्हें अंतर्ग्रहण करने पर स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्राभावों को बताया गया है–

अलाचलोर (Alachlor) – यह एक शाकनाशी है जिसका उपयोग सन् 1969 से अनाज, सोयाबीन और मूँगफली की फसलों में घासमय अपतृण को नियंत्रित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अलाचलोर के अंतर्ग्रहण से नेत्र, लिवर, गुर्दे, प्लेह की समस्याएँ, अनामिया और कैंसर का खतरा अत्याधिक बढ़ जाता है।

अट्राजिन (Atrazine) – ज्वार और क्षेत्रीय अनाज पर शाकनाशी के रूप में कई दशकों से इसका व्यवहार होता आ रहा है। ग्रहण करने पर अट्राजिन से हृदयवाहिका और प्रजनन समस्याएं आ सकती हैं। कुछ यूरोपीय देशों में इस पर प्रतिबंध लगा है।

इंडोथॉल (Endothall) – सन् 1995 से मीठे चुकंदरों, पालक और आलू पर शाकनाशी के रूप में इसका प्रयोग होता आया है। इंडोथॉल का अंतर्ग्रहण उदरीय और आंत–संबंधी समस्याएं पैदा कर सकता है।

लिंडेन (Lindane) – यह एक कीटनाशी है जिसका प्रयोग वर्तमान में मवेशी, काठ–कबाड़ और उद्यान में किया जाता है। लिंडेन का अंतर्ग्रहण लिवर और गुर्दे में खराबी ला सकता है।

कीटनाशी – कीटों के विरुद्ध प्रयुक्त होने वाले पीड़कनाशी रसायन को कीटनाशी कहते हैं। इनमें अंडनाशी (ovicidees) और डिंभकनाशी (larvicides) शामिल हैं जिनका प्रयोग क्रमशः कीटों के अंडों और लार्वा के लिए किया जाता है। भारत में सब पीड़कनाशी रसायनों में से कीटनाशियों का प्रयोग लगभग 70% होता है, इसकी तुलना में विकसित देशों में यह केवल 30% ही होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में फसलों पर पादप–भोजी कीट बहुप्रज (multivoltine) होते हैं, इस प्रकार इनकी समस्या अधिक प्रत्यक्षता और प्रबलता का परिचय देती हैं। अतः किसान इसके निवारण के लिए रासायनिक उपचार की अधिक चेष्टा करते हैं। कीटनाशी का प्रयोग कृषि, दवा उद्योग और घरों में किया जाता है। 20वीं शताब्दी में कीटनाशियों का प्रयोग कृषि उत्पादकता में बढ़ोतरी का एक प्रमुख कारण है। लगभग सभी कीटनाशियों में पारितंत्र को सार्थक रूप से बदलने की क्षमता होती है, बहुत से

कीट–पक्षी, मनुष्यों के प्रति विषैले होते हैं और अन्य आहार–शृंखला में केंद्रित रहते हैं।

कीटनाशियों का वर्गीकरण कई तरीकों से किया जाता है–

(i) प्राकृतिक कीटनाशी, जैसे कि निकोटिन, पायरेथ्रमु (pyrethrum) और नीम के अर्क कीड़ों से सुरक्षा के लिए पौधों से बनाए जाते हैं। निकोटिन पर आधारित कीटनाशियों का प्रयोग व्यापक रूप से अभी भी अमेरिका और कनाडा में होता है जबकि यूरोपीय देशों में प्रतिबंधित है।

(ii) कार्बनिक कीटनाशी संलिष्ट रसायन होते हैं।

(iii) अकार्बनिक कीटनाशी धातुओं से बनाए जाते हैं जिसमें आर्सेनेट, ताम्र और फ्लोरीन के यौगिक शामिल हैं जिनका कभी–कभी इस्तेमाल होता है और सल्फर जिसका प्रायः इस्तेमाल किया जाता है।

जैव कीटनाशी – इसका एक उदाहरण बैसीलस थुरिन्जिएन्सिस के इस्तेमाल में विकास और वृद्धि है जोकि लेपीडॉटेरन्स और अन्य कीटों द्वारा उत्पन्न एक जीवाण्विक रोग है। इस जीवाणु की विभिन्न नस्लों द्वारा उत्पन्न विषैले तत्वों का इल्लियों, भौरों और मच्छरों के विरुद्ध डिंभकनाशी के रूप में इस्तेमाल होता है। सैकचारोपोलिसपोरा स्पिनोसा से प्राप्त विषैले तत्वों को किण्वन द्वारा विगलित किया जाता है और स्पिनोसौड के रूप में बेचा जाता है। चूंकि इन टॉक्सिनों का दूसरे जीवाणुओं पर अल्प प्रभाव पड़ता है, अतः ये संलिष्ट पीड़कनाशी रसायनों की तुलना में अधिक पर्यावरणीय अनुकूल समझे जाते हैं। बी. थुरिन्जिएन्सिस से प्राप्त टॉक्सिन को आनुवंशिक अभियांत्रिकी की मदद से पौधों में प्रत्यक्ष रूप से समाविष्ट किया जाता है।

पादप रोग नियंत्रण में प्रगति – रासायनिक पीड़कनाशी रसायनों के साथ निरंतर बढ़ती समस्याएं प्राधिकारियों और किसानों को अधिक संधारणीय खेती के लिए नवीन और सुरक्षित पीड़कनाशी रसायनों को आजमाने के लिए बाध्य कर रही है।

उपभोक्ता ऐसे खाद्य पदार्थ को खरीदना नहीं चाहते हैं जिन्हें रसायनों से उपचारित किया गया है और जिनमें पीड़कनाशी रसायनों के अवशेष शामिल रहते हैं। विश्व के अनेक देशों में उपभोक्ता समुदाय खाद्य सुरक्षा के प्रति काफी जागरूक हो गए हैं और खाद्य शृंखला से ऐसे अवशेषों को हटाने के लिए सक्रियता से प्रचार करते हैं। यह प्रवृत्ति जैव पीड़कनाशी रसायनों (जैव–सूत्रकृमिनाशी और जैव–कवकनाशी) की नई पीढ़ियों के साथ मेल खाती है, जोकि मात्र प्रभावी ही नहीं है बल्कि अंत्य उपयोगकर्त्ता की मांगों को भी पूरा करते हैं।

उपभोक्ताओं को अधिक सुरक्षित उत्पाद प्रदान करने के साथ–साथ उनकी फसलों को कटाई–पूर्व और कटाई–पश्च रोगों से निजात दिलाकर किसान अब जैविक कीटनाशी रसायनों की नई पीढ़ी की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ये जैविक उत्पाद प्राकृतिक रूप से घटित सूक्ष्मजीवों पर आधारित हैं जोकि प्रकृति के अनुकूल बनकर घातक पर्यावरण को नियंत्रित करने के लिए काम करते हैं। उचित फसलों और यथोचित परिस्थितियों में प्रयुक्त ये जैविक उत्पाद–संबंधित को बिना नुकसान किए पीड़कनाशी रसायनों के प्रभावीपन से बराबरी करते हैं।

पहले किसान जैविक नियंत्रण कर्सक का प्रयोग करने में उनकी अपेक्षाकृत कम शेल्फ आयु और मंद क्रियाशीलता के कारण हिचकिचाते थे। अब बॉयनेम (Bio-Nem), बॉयोसेफ (Bio-Safe) और शेमर (Shemer) जैसे उत्पादों की निधानी आयु एक वर्ष से ज्यादा होती है और दीर्घावधि में अच्छा परिणाम दिखा सकते हैं। क्षेत्र परीक्षणों में बॉयोनेम-WP और बॉयसेफ प्रत्यक्ष सुरक्षा और पर्यावरणीय फायदों के साथ–साथ कार्य–निष्पादन में भी रासायनिक पीड़कनाशी रसायनों के बराबरी या बढ़ोतरी दिखाते आए हैं।

शेमर (Shemer) – जैव–कवकनाशी शेमर सड़न की एक व्यापक श्रेणी को जैसे एस्परगिलस, बोट्रीटिस, पेनीसिलियम और एजोपस को सार्थक रूप से रोकता है। इसका प्रयोग संकुलन गृह में कटाई–पश्च और खेत में फल के पकने से पहले कटाई–पूर्व दोनों ही स्थितियों में होता है। शेमर जैव–कवकनाशी वर्तमान में

इजरायल में खुबानी, अंगूर, स्ट्राबेरी, निंबू–वंश, आड़ू, काली मिर्च और शकरकंद के लिए पंजीकृत है।

सक्रिय संघटक : मेट्श्चिकोविया फ्रूस्टिोला (Metschikowia frucitola)।

सूत्रण : जल परिक्षेपित कणिकाएं।

कार्य की विधि : सड़न या विगलन को मुख्यतया प्रतिस्पर्धा द्वारा रोकना।

अनुप्रयोग का तरीका : कटाई–पूर्व या पश्च बौछार या डुबकी।

निधानी आयु : व्यापक स्थितियों में एक वर्ष।

बॉयानेम-WP और इसका कार्बनिक रूप

ये जैविक सूत्रकृमिनाशी बढ़ी हुई उपज को उद्दीप्त करते समय उल्लेखनीय ढंग से सूत्रकृमि की संख्या और मृदा में मूल के ग्रसन को कम करते हैं। फसलों की एक व्यापक श्रेणी में उनका उपयोग बहुत–से विभिन्न प्रकार के सूत्रकृमियों में हो सकता है। एग्रो ग्रीन (Agro Green) जैव सूत्रकृमिनाशी वर्तमान में इजरायल में खीरा, बैंगन, काली मिर्च, टमाटर, बादाम, खूबानी, जैतून, आड़ू, बेर, अनार, मुख्य जड़ी–बूटियों, फूलों और लहसुन में इस्तेमाल के लिए पंजीकृत है।

सक्रिय संघटक : बैसीलस फर्मस (Bacillus firmus)।

सूत्रण : गीला पाउडर।

कार्य की विधि : सूत्रकृमि आबादी में लगातार कमी।

इस्तेमाल की विधि : किसी सिंचाई तंत्र द्वारा इसे रोपण से पहले लगाना बेहतर है।

निधानी आयु : प्रायः दो वर्ष से ज्यादा।

कीटनाशी रसायनों के नफे–नुकसान को लेकर दुनियाभर में बहस छिड़ी हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिर्पोट के अनुसार, इसके कारण दुनियाभर में प्रतिवर्ष करीब 30 लाख लोग बीमार हो जाते हैं और 2 लाख लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं। पैराथियान जैसे अत्यंत विषैलें कीटनाशी का असर 16 वर्ष से भी अधिक समय तक मिट्टी में बरकरार रहता है। इससे कीड़ों के साथ मधुमक्खी जैसे उपयोगी जीव भी मर जाते हैं। ऑल इंडिया बॉयोटेक ऐसोसिएशन के मुताबिक खाद्य श्रृंखला में प्रतिबंध कीटनाशियों का प्रतिशत विश्व में 1.2% है जबकि भारत में यह 25% है। आज सिर्फ कीटनाशियों का असर होने के कारण से ही चाय, चावल, कॉफी आदि का अरबों रुपयें का निर्यात प्रतिवर्ष रद्द हो जाता है। विश्व भर में रसायनरहित खेती की अवधारणा उभर रही है।

खपत की दृष्टि से विषैले कीटनाशियों का सर्वाधिक 45% उपयोग कपास में किया जाता है। इसके बाद दूसरे नंबर पर 25% कीटनाशी सब्जियों में इस्तेमाल किए जाते हैं। शेष मात्रा गेहूँ, धान, दलहनी फसलों तथा उद्यानों में प्रयोग की जाती है। बेअसर होते कीटनाशियों से जब फसलों की सुरक्षा होती दिखाई नहीं देती तो हताश कृषक आत्महत्या करने जैसे कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस प्रकार इस ज़हर का कहर कृषि के बाद कृषकों को भी अनजाने में लील रहा है।

कीटनाशी रसायनों के प्रयोग में प्रायः बहुत–सी जरूरी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। अधिकांश लोग उपयोग के समय गलतियाँ करते हैं। दस्ताने, चश्मा, जूते, श्वास उपकरण पहनने जैसे सुरक्षात्मक उपाय करना तो दूर, वे पैकिंग में छपे आवश्यक निर्देशों को पढ़ने की ज़हमत भी नहीं उठाते। प्रायः छिड़काव या बुरकाब के यंत्रों से रिसाव होता रहता है। असुरक्षित भंडारण, स्थानांतरण तथा प्रयोग से दुर्घटनाएं होती हैं। विष प्रभाव के लक्षण, प्राथमिक उपचार तथा प्रतिकारक उपचारों के विषय में जन–जागरुकता को बढ़ाया जाना जरूरी है। साथ–ही–साथ कीट नियंत्रण के वैकल्पिक उपायों को व्यापक रूप से अपनाया जाना चाहिए।

वैज्ञानिकों के समक्ष कृषि उत्पादन बढ़ाने का प्रयास प्रारंभ से ही एक चुनौती रहा है। भारत की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थों की उपलब्धता प्रत्येक सरकार का मुख्य उद्देश्य ही नहीं, अपितु संवैधानिक कर्तव्य भी है। एक समय ऐसा भी था जब हम गेहूँ, चावल आदि के लिए अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों पर निर्भर रहते थे। लेकिन सन् 1990 के प्रारंभ में, 'हरित क्रांति' ने इस खाद्य–समस्या से छुटकारा दिला दिया। वास्तव में यह क्रांति पौधों की संकर जातियों, नई

किस्मों एवं रासायनिक खादों के समुचित उपयोग से सफल रही। फलस्वरूप, जितनी भूमि में पहले लाखों टन खाद्यन्न उत्पन्न होता था, उतनी ही भूमि में करोड़ों टन खाद्यन्न उत्पादित होने लगा।

पिछले दो–तीन दशकों में इन कृत्रिम रासायनिक खादों, विषैले कवकों एवं कीटनाशियों का सर्वाधिक उपयोग किया गया। इसके दुष्परिणाम अब चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं। सिर्फ भारत मं ही अब लाखों हेक्टेयर उपजाऊ कृषि–भूमि अम्लीय एवं रेहिलें में परिवर्तित होकर बंजर बन गई है। विकल्प के रूप में वैज्ञानिकों ने खोज निकाला 'सदाबहार हरित–क्रांति' का रास्ता।

हमारे देश के प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक एवं किसान आयोग के अध्यक्ष डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन ने भारतीय किसानों को 'हरित क्रांति से सदाबहार हरित क्रांति' (Green revolution to Evergreen revolution) की ओर अग्रसर होने का आह्वान किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से किसानों से कहा था कि फसलों पर होने वाला खर्च निरंतर बढ़ता ही जा रहा है तथा मिट्टी की प्राकृतिक संरचना, उपजाऊपन व उर्वरा शक्ति को कम करने वाली यह तकनीकी न तो टिकाऊ है और न ही फसल उत्पादकता में सक्रिय। फसल उत्पादन के साथ–साथ मृदा की गुणवत्ता भी क्षीण होती जा रही है।

कृषि में हरित क्रांति ने फसलों की पैदावार को बढ़ाकर तो कई गुना कर दिया, किंतु रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशियों का प्रयोग करना भी सिखा दिया। अंधाधुंध छिडकाव का उल्टा असर पड़ा और शत्रु कीटों के साथ–साथ मित्र कीटों का भी सफाया हाने लगा। सुंदर सफेद दिखने वाली फूलगोभी पर मेथिल पैराथियान, हरी–हरी भिंडी पर कॉपर सल्फेट तथा चमकदार बैंगन पर पड़े खतरनाक रसायन किचन तक बड़ी आसानी से पहुँच रहे हैं। सामान्य दर्द से लेकर कैंसर तक की संभावनाएं इनके जहरीले प्रभाव के कारण बढ़ रही है। हमारी मिट्टी, पानी और हवा में खतरे की घंटी बज रही है।

अतः स्पष्ट हो गया है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कितना भी अधिक क्यों न किया जाए, फसल उत्पादन तथा निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता। ऐसी मृदा भी 'फर्टीहोलिक' हो गई है। विशेषतः इन हानिकारक तथा महंगे रसायनों से किसानों पर आर्थिक संकट लगातार बढ़ता जा रहा है। कई राज्यों से किसानों के खुदकुशी करने के भी समाचार लगातार प्रकाश में आते रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में केंचुए की बहुआयामी उपोगिता दृष्टिगोचर होती है।

खाद निर्माणकर्ता के रूप में – कार्बनिक अवशेष या वेस्ट पदार्थ हमारे पर्यावरण के लिए गंभीर समस्या बन चुके हैं क्योंकि ये अधिक जगह घेरने के साथ–साथ बदबू फैलाते हैं तथा मच्छरों और कई प्रकार के सूक्ष्मजीवों के लिए प्रजनन गृह का काम करते हैं। आबादी के पास पड़ा हुआ ठोस कचरा तो बहुत ही हानिकारक होता हे। केंचुए ही मात्र ऐसे जंतु हैं जो ठोस पदार्थों को जैव उर्वरक के रूप में बदला जा रहा है। केंचुए की कई जातियां जैसे यूड्रिलस यूजेनी, इसेनिया, फेटिडा और पेरिऑनिक्स इक्सवेटस कृषि–अवशेष जैसे गन्ने की खोई, गाय, भेड, घोड़े आदि के गोबर को उर्वरक में बदलने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो चुके हैं। दुनिया के विकसित राष्ट्र तो हाईटेक वर्मीकम्पोस्टिंग द्वारा करोड़ों डॉलर कमाने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण एवं कचरे के जीवाणुओं से फैलने वाले रोगों को नियंत्रित करने में मदद भी कर रहे हैं। वर्मीकम्पोस्टिग को कई देश अपने यहाँ उद्योग के रूप में विकसित कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर कनाडा का 'वर्मीटेक सिस्टम' एवं अमेरिका का 'ओरेगॉन स्पॉइल कॉरपोरेशन' उच्च स्तर की तकनीकी इस्तेमाल कर वर्मी उद्योग स्थापित करके वर्मी उर्वरक बेच रहे हैं। आवश्यकतानुसार केंचुओं के भोजन को बदलकर विभिन्न प्रकार के वर्मी उर्वरक तैयार किये जा रहे हैं।

भारत में राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेश से भी पेरिऑनिक्स सेंसीवेरिकस, पेरिऑनिक्स इक्सकेवेटस एवं पालीफेरिटिया इलांगेटा जैसी केचुओं की उपयोगी जातियों को खोजा गया है। केंचुए ताजा अथवा आंशिक रूप से सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों को मृदा से ग्रहण करते हैं और ग्रहण किया हुआ कार्बनिक पदार्थ उनके

द्वितीय अमाशय (गिजर्ड) में जाकर पिसाइ क्रिया द्वारा छोटे–छोटे टुकड़ों में टूटता है। यह खंडित कार्बनिक पदार्थ एंजाइम क्रिया द्वारा पाचन के बाद कोलायडल हयूमस के रूप में उत्सर्जित होता है जो पौधों के लिए अत्यधिक लाभकारी है। आज के रासायनिक प्रदूषण के ज़माने में रासायनिक खाद के स्थान पर कंपोस्ट खाद का उपयोग पर्यावरण संरक्षण के लिए अति आवश्यक हो गया है।

केंचुए द्वारा उत्सर्जित उत्पाद में कार्बनिक पदार्थ, मिट्टी के अलावा कुछ मात्रा में लोहा, कैल्सियम, मैग्नेशियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन आदि भी पाए जाते हैं। इस उत्सर्जन में कैल्सियम, मैग्नेशियम, सोडियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस इत्यादि की मात्रा आस–पास की मृदा से अधिक होती है। पौधे उगाने के लिए महंगी रासायनिक खाद के स्थान पर इन केंचुओं द्वारा निर्मित कार्बनिक खाद अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्वों द्वारा पौधों की वृद्धि और उपज को बढ़ाया जा सकता है। जीव व जंतु वनस्पति तथा औद्योगिक अवशेषों को बहुत ही कम लागत पर केंचुओं द्वारा कार्बनिक खाद में बदला जा सकता है। स्वच्छ वातावरण, अधिक उपज और उत्कृष्ट कृषि के लिए केंचुओं को खेती में छोड़ा जाना चाहिए ताकि पोषणयुक्त वर्मीफर्टिलाइजर प्राप्त हो सके। केंचुए की कई जातियां जैसे यूड्रिलस यूजेनिक्स, इसेनिया फेटिडा और पेरिऑनिक्स इक्सकेवेटस बहुत ही सहजता से कार्बनिक अवशेषों के अनुकूलित होकर वर्मीकंपोस्ट उत्पन्न करते हैं जिसका कार्बनिक खाद के रूप में उपयोग किया जाता है ताकि कार्बनिक कार्बन की कमी और मृदा में पौष्टिकता क्षरण से खेतों को बचाया जा सके। केंचुए की मृत कोशिकाएं भी मृदा में नाइट्रोजनीकृत खाद के रूप में काम में आती है।

संसार के कई भागों में खेती की उपज कम हो गई है जिसका कारण है – मिट्टी में प्राकृतिक ऊर्जा (फॉसिलबेस्ड एनर्जी) की कमी। यह कमी रासायनिक खाद एवं कीटनाशियों के ज्यादा उपयोग से पैदा हुई है। इस कमी को केंचुए बखूबी पूरा कर सकते हैं। केंचुओं में पुनरुद्भवन की क्षमता होती है जिससे वे खेतों में जुताई के समय कट जाने पर कम समय में ही पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाने में केंचुए की अहम भूमिका सिद्ध हो चुकी है। यह बंजर भूमि को पोषक तत्वों से परिपूर्ण कर देता है। इसके अलावा वर्मीकंपोस्ट के उपयोग से खेतों की जैवविविधता बढ़ती है तथा लाभदायक जीवों जैसे प्रिडेटर्स के बढ़ने पर पेस्ट्स का जैविक नियंत्रण प्राकृतिक तौर पर खतम होने लगता है। वर्मीफर्टिलाइजर द्वारा पैदा किए हुए कृषि उत्पाद खासकर साग–सब्जियों की ज्यादा कीमत किसानों को मिल जाती है तथा मनुष्य कीटनाशीयुक्त सब्जियाँ खाने से बच जाते हैं। कुछ देशों की बड़ी दुकानों पर जैव उर्वरक द्वारा पैदा किए गए उत्पाद अलग रखकर बेचे जाते हैं ताकि मनुष्य यदि चाहे तो घातक रसायनयुक्त भोजन करने से बच सके।

कई जगहों पर केंचुओं की कुछ जातियों ने मिट्टी के कटाव को रोककर भूमि की शोषण क्षमता को बढ़ाया है। एपोरेक्टोडिया केलिजिनोसा ने मृदा में पानी के अवशोषण व स्थायित्व को 70% तक बढ़ाया है। एपोरेक्टोडिसा लॉगा को भूमि की ऊपज और पैदावार को सुधारने के लिए जाना जाता है। इस कारण वैज्ञानिक पूरे आस्ट्रेलिया में इसका प्रसार कर रहे हैं। लुम्बिकस टेरेस्ट्रिस नामक जाति को मृदा में गहरे बिल बनाने के लिए जाना जाता है जिससे पौधों की जड़ें अधिक गहराई तक जाकर अधिक पानी और पोषण ले सकती हैं। केंचुए में पौधों की उपज और उनकी गुणवत्ता बढ़ाने की क्षमता होती है। भारत में भूमि सुधार के लिए पॉलिफेरिटिमा–इलांगेटा नामक जाति सबसे अनुकूल मानी जाती है।

लिंडेन, पैराथियान, एल्ड्रिन, हेप्टाक्लोर, पैरावेट, डी.वी.सी.पी., बी.एच.सी. एवं डी.डी.टी. इत्यादि की बिक्री पर अमेरिका में पूरी तरह पाबंदी है जबकि इनमें से कई पर 'हानिरहित' का लेबल लगाकर उन्हें विज्ञापनों के द्वारा भारत में अधिक प्रचारित व प्रसारित कर बेचा जाता है। इनसे अब फसलों की सुरक्षा तो नहीं हो

पाती, बल्कि कई बार विषाक्तता के कारण अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय फसलों के सौदे निरस्त जरूर हो जाते हैं।

निराशा के इस दौर में आर्थिक रूप से कमजोर किसानों की आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु सार्थक एवं सस्ते स्रोत के विकल्प के रूप में जैविक कृषि एवं सस्ती एवं संधारणीय कृषि विधि के रूप में सामने आई हैं। जैव–उर्वरक अपनी उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप स्रावित होने वाले विभिन्न ऐंटीबॉयोटिक्स, विटामिन एवं हॉर्मोस जैसे इन्डोल एसीटिक एसिड (IAA), साइटोकाइनिन, जिब्रेलिन आदि का स्राव कर पौधों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लाभ पहुँचाते हैं। कम उत्पादकता तथा उच्च गुणवत्ता के कारण ही कार्बनिक उत्पादों की माँगें अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय बाज़ारों में लगातार बढ़ रही हैं। इसी प्रकार के प्रयास एवं शोध की आवश्यकता हमारे देश में भी है जो न केवल भारतीय खेती एवं किसानों की दशा एवं दिशा बदल सकते हैं बल्कि मृदा के प्राकृतिक उपजाऊपन, गुणवत्ता, पारिस्थितिकी एवं आधारभूत संरचना को बनाए रखने में भी सहायता करेंगे।

कीटनाशी अधिनियम 1968 के अंतर्गत फसल सुरक्षा हेतु देश में प्रयोग किए जाने वाले सभी पंजीकृत कीटनाशियों में से 20 कीटनाशियों पर पूर्व में ही प्रतिबंध लगाया जा चका है। इसके बाद 18 कीटनाशी और ऐसे हैं जिन पर सरकार शीघ्र ही पाबंदी लगाने वाली है। इस बारे में अधिक जानकारी हेतु सचिव, केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड, वनस्पति संरक्षण, संगरोध एवं संग्रह निदेशालय, एन.एच–04, फरीदाबाद से संपर्क किया जा सकता है। कृषि मंत्रालय का यह विभाग कीटनाशियों की अशुद्धता, कमियों का विवरण, टर्मिनल अवशेषों, फसलों पर प्रयोग की अनुमति, प्रतीक्षा अवधि, तीक्ष्णता तथा विषाक्तता की अवधि आदि का विवरण रखता है। गुणवत्ता सुधारने की दृष्टि से सरकार द्वारा सभी कीटनाशी रसायनों पर अब आई.एस.आई का मार्क होना अनिवार्य कर दिया गया है। समेकितनाशी कीट प्रबंधन जैसी प्रणालियों को लोकप्रिय किए जाने की आवश्यकता है ताकि कीटनाशियों का प्रयोग केवल अपरिहार्य स्थिति में तथा कम से कम मात्रा में ही किया जाए। जो कीटनाशी विशेष रूप से पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल हैं, उनको बढ़ावा देने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा एन.ए.टी.पी. परियोजना चलाई जा रही है। दरअसल ऐसी उपयोगी जानकारी को आम किसानों में उनकी अपनी भाषा में कारगर ढंग से पहुँचाया जाना बेहद जरूरी है। ऐसे मामलों में संचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

कीटनाशी रसायनों का प्रयोग सब्जियों पर बहुत ही सावधानीपूर्वक प्रधूलकों से करना चाहिए, क्योंकि वायु कीटनाशियों की फुहार को अवांछित दिशाओं में धकेल कर ले जाती है। छिड़काव के दौरान अनावरण का अत्यल्प स्तर भी स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। दूसरी तरफ फसलों में प्रयुक्त होने वाले पीड़कनाशी रसायन वाष्पीकृत हो सकते हैं और निकटवर्ती क्षेत्रों में वायु द्वारा बहकर वन्य जीवों के लिए संकट बन जाते हैं।

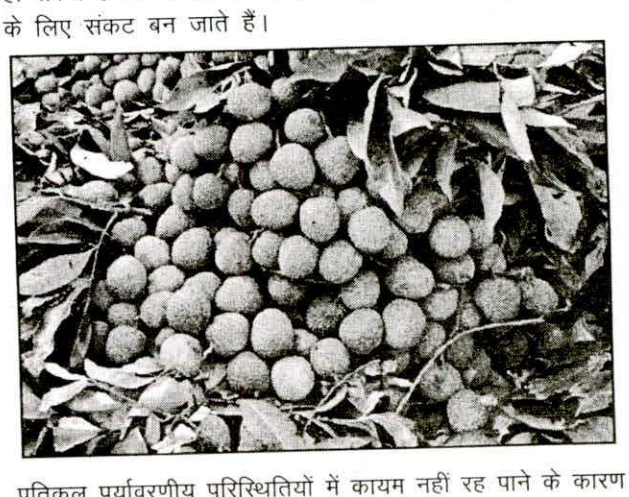

प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में कायम नहीं रह पाने के कारण लीची एक बहुत ही कार्यिकीय पदार्थ है। विकारशील और सूक्ष्मजैविकी परिवर्तनों के कारण इसके फल तुड़ाई के बाद शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इससे लीची के व्यापार में बाधा उत्पन्न होती है। अभी हाल में 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र' ने एक ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित की है जिससे लीची की निधानी आयु (shelf life) 30 से 40 दिनों तक

○○○

3

दलहनी फसलें : मृदा उर्वरकता हेतु लाभकारी

डॉ. आर. एस. सेंगर एवं अमित कुमार

किसान भूमि की उर्वराशक्ति को बढाने के लिए तरह–तरह के रासायनिक खाद का प्रयोग करते है जिससे भूमि कि उर्वराशक्ति तो लगभग बढ जाती है पर मृदा प्रदूषण का खतरा बना रहता है। इसलिए दलहनी फसलों को उगाएं और भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाएं ताकि रासायनिक खाद्य का प्रयोग कम से कम हो सके और मृदा, प्रदूषण से बचा जा सके। दलहनी फसलों की जड़ों में मौजूद वायुमंडल की नाइट्रोजन को खींच कर धरती में जमा करते है। जिससे मृदा की उर्वराशक्ति भी बढ जाती है और पैसे की भी बचत होती है। मटर, लोबिया, राजमा, ग्वार, अरहर, मूंग और फरासबीन इस वर्ग की प्रमुख दलहनी फसलें है।

भारत एक कृषि और उससे संबंधित व्यवसायों पर निर्भर है इसलिए आज के वैज्ञानिक युग में खासकर भारत जैसे कृषि प्रधान देशों के लिए कृषि को व्यवसाय के रूप में अपनाया जाना आवश्यक है। आधुनिक भारत के निर्माता प. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि गांधी जी शायद आधुनिक भाषा में स्पष्ट न कर पाएं हों लेकिन इनका सारा दर्शन मात्र सामाजिक न्याय का नहीं, बल्कि समाज सुधार व भूमि सुधार का था। कृषि के ढांचे तथा संगठन में स्थान, समय तथा परिस्थितियों के अनुकूल क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता बहुत पहले से महसूस की जाती रही है भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन उन्नयन शुद्धिकरण तथा आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भूमि–सुधारों का विशेष महत्व है। आज के युग में कृषि उत्पादन बढाने में उर्वरक की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भारत में उर्वरक प्रति यूनिट क्षेत्र में खपत अब काफी उपर आ गई है। सन् 2011–12 में उर्वरक की प्रति हेक्टेयर खपत लगभग 75.25 कि.ग्रा. हो गई। इसकी खपत को बढ़ता देखकर वैज्ञानिकों ने जैविक उर्वरक खोज निकाले है जो रासायनिक उर्वरक से अधिक प्रभावशाली सस्ते और फिर से प्रयोग में लाये जाने वाले स्रोत हैं। प्रायः देखा गया है कि कृषि में प्रमुख रासायनिक उर्वरकों का अधिकतम 50 प्रतिशत ही उपयोग में आ पाता है, शेष निक्षालन (लीचिंग) वाष्पीकरण और विनाइट्रीकरण जैसी क्रियाओं में नष्ट हो जाता है। अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वातावरण को भी प्रदूषित करता है। इन सभी कारणों ने मानव को रासायनिक उर्वरक के विकल्प की खोज के लिए प्रेरित किया था। रासायनिक खादों को डालने से किसानों का काफी पैसा खर्च हो जाता है। अतः इसको बचाने के लिए भूमि में दलहनी फसलों की खेती करनी होगी।

बहुत से लोग सोचते होगे कि दलहनी फसलों में ऐसी कौन सी वस्तु है जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ा देती है इसको जानने के लिए आप दाल वाले किसी पौधे को उखाड़कर देखे तो पायेंगे कि जड़ में छोटी–छोटी गांठे होती है जो हल्के पीले रंग की होती है। पौधों कि जड़ों में विद्यमान जीवाणु वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन को लेकर अमोनियम में बदलकर पौधे के लिए नाइट्रोजन की आपूर्ति करते है तथा मिट्टी में नाइट्रोजन की 20 से 30 प्रतिशत तक मात्रा बढ़ा देते है। फसल कटने के बाद जड़े तो भूमि से ही आपूर्ति करते है तथा मिट्टी में नाइट्रोजन का उपयोग आने वाली दूसरी फसलें करती है। जिससे रासायनिक खादों की काफी मात्रा बचा ली जाती है। अतः दलहनों की खेती से किसानों को काफी लाभ पहचता है। जो निम्न प्रकार हैः–

1. इनके उगने में खर्च कम आमदनी ज्यादा होती है। खाद की मात्रा भी बहुत कम होती है। कभी–कभी पहली फसल में डाला गया फॉस्फोरस ही काफी होता है। यदि हम मिट्टी की जाँच करवा ले तथा बीज को राइजोबियम का टीका लगा लिया तो लाभप्रद होता है।
2. जहाँ पर भूमि कम उपजाऊ और पानी की मात्रा भी कम है वहाँ दलहन आसानी से उगाया जा सकता है ये फसलें घास पतवार को भी नष्ट करती है, भूमि में नमी रोकती है, जिससे भूमि उपजाऊ बनती है।
3. दलहनी खेती को सघन कृषि बहुफसल प्रणाली तथा मिश्रित फसलों के तौर पर वर्ष में दो या तीन मौसम में बोया जा सकता है। इससे दूसरी फसलों का क्षेत्रफल भी नहीं घटता है, बल्कि इनका उत्पादन भी घटता है।

दलहनी फसलों का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

निरंतर जनसंख्या वृद्धि एवं रहन–सहन के स्तर में सुधार को दृष्टिगत रखते हुए फसलोत्पादन में निरंतर वृद्धि वांछनीय हैं उपज में वृद्धि के साथ–साथ हमें ध्यान देना होगा की मृदा उर्वरता क्षीण न होने पाये। सघन कृषि पद्धतियों के प्रयोग के चलते पोषक तत्वों की निकासी एवं उनकी भरपाई अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। पौधों की सम्पूर्ण वृद्धि एवं विकास के लिए, मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के स्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न पोषक तत्वों के स्रोतों का समायोजित प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा पौधों को उपलब्ध हो सके एवं मृदा–स्वास्थ्य तथा मृदा पर्यावरण संरक्षित रहें।

दलहनी फसलें एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्वपूर्ण अंग है। दलहनी फसलें भूमि की उर्वराशक्ति को बढाने के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपहार है। दलहनी फसलों का प्रबंधन समुचित रूप से किया जाए तो वह मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान साबित हो सकती है। दलहनी फसलों का प्रबंधन समुचित रूप से भूमि की उर्वराशक्ति को बढाने के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपहार है। दलहनी फसलों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को समायोजित करने की अद्भुत क्षमता होती है। इनकी जड़े अपेक्षाकृत अधिक गहराई तक जाती है। इनकी जड़ों में गांठे पाई जाती है। जिनमें एकीकृत करने वाले जीवाणु होते है। सघन चक्र आदि में दलहनी फसलों का समावेश किया जाता है तो यह फसलें मृदा की भौतिक रासायनिक व जैविक दशा सुधार कर मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखती है।

दलहनी फसलों का फसल चक्र में समावेश

दलहनी फसल–चक्र को "मृदा उर्वरता पोषक फसल चक्र" कहा जाता है। दलहनी फसलों की जड़े व पत्तियाँ मृदा में अपेक्षाकृत अधिक जैव पदार्थ छोड़ती है। इसलिए दो धान्य फसलों के बीच दलहनी फसलों का समावेश अवश्य करना चाहिए। दलहनी फसलों का प्रयोग हरी खाद के रूप में भी किया जा सकता है। दलहनी फसलें वायुमंडल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती हैं तथा अपनी आवश्यकता से अधिक बची हुई नाइट्रोजन को अगली फसलों को प्रदान करती है।

दलहनी फसलों का खरपतवार नियंत्रण में योगदान

खेत में एक फसल को लगातार लेते रहने से फसल विशेष के खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि होती रहती है। जिन खेतों में खरपतवार का प्रकोप अधिक हो उन खेतों में प्रतियोगी तथा शीघ्र बढ़ने वाली दलहनी फसलें जैसे : सनई, ढैंचा, मूंग, उड़द तथा लोबिया आदि को खरपतवारों के नियंत्रण हेतु लगाना चाहिए। क्योंकि दलहनी फसलें प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि करती है और शीघ्रता से फैलकर भूमि को ढक लेती है। इसलिए खरपतवार फसल से प्रतियोगिता नहीं कर पाते है। यह प्रतियोगी फसलें खरपतवारों के प्रकाश, वायु जल व पोषक तत्वों की उपलब्धता को रोक देती है।

जिनके कारण खरपतवारों की वृद्धि रुक जाती है। वे फसल को नुकसान नहीं पहुँचा पाते।

यहाँ कुछ दलहन किस्मों के बारे में बतलाया जा रहा है। इन किस्मों को फरवरी माह और अगस्त माह में बोया जा सकता है। इन किस्मों को बहुफसल प्रणाली में तथा मिश्रित खेतों में उगाया जा सकता है।

दलहनी फसलों को वर्ष में दो बार बोया जाता है तथा इनकी सहायता से वर्ष में चार बार फसल ली जा सकती है तथा फसल भी काफी अच्छी होती है। दलहनी फसले गन्ने के साथ मिलाकर बोई जा सकती हैं। यहाँ पर बहुफसल प्रणाली में दलहनी फसले किस प्रकार ली जाए सारणी में प्रदर्शित किया जा रहा है।

सारणी–1 भारत में पाई जाने वाली दलहनी किस्में

फसल किस्में	किस्में	दिन	उपज क्विंटन/हेक्टेयर
मूंग	एम.एल.–पूरा–105, टी.–44, पी.डी. एम.–58, पी.डी.एम. 58, पी.एस.–16	85	8–12
उड़द	पत.यू.–19 तथा 30, टी–9, खरभाव–3	90–95	15–25
अरहर	डी.एल.–78, मानक, यू.पी.एस.–120, टी.–21 टी.टी.–6, टी.ए.टी.–10	140	12–25
राजमा	ज्वाला, हंस, बी.एल.–60	80	15–20
सोयाबीन	पंजाब–1 ली., मेरिट प्राडज	90–110	20–30
लोबिया	सी.152, एस.एस. 68 पूसा दो फसली	80	10–15

दलहनी फसलों भूमि को उर्वरा शक्ति तो बढेगी ही लेकिन साथ अच्छे लाभ प्राप्त होंगे। अतः कहा जा सकता है

"जब दलहन उगाये सहित लगन।
खेती होगी तभी सघन।।"

यदि मिट्टी में वर्तमान जीवांश और नाइट्रोजन की कमी को पूरा नहीं किया गया तो भूमि की उर्वराशक्ति धीरे–धीरे नष्ट होती चली जाएगी। इसलिए मिट्टी में जीवांश और नाइट्रोजन की मात्रा को बढाने अथवा पर्याप्त मात्रा में बनाए रखने के लिए समय–समय पर दलहनी फसलों को उगाते रहना अति आवश्यक है।

सारणी–2 बहुफसल प्रणाली में दलहनी फसलें उगाएं

फरवरी से मध्य मई तक	मई माह से जुलाई तक	अगस्त माह से अक्टूबर तक	नवम्बर से जनवरी तक
मूंग उड़द, मटर, राजमा, लोबिया **अथवा** आलू, मेंथी, कद्दू	चारा/सब्जी **अथवा** खरीफ की फसलें	मूंग/उड़द/ राजमा/लोबिया **अथवा** आलू	शीत की शीघ्र कटने वाली सब्जियां **अथवा** रबी की फसले

○○○

4

कीटनाशियों से भोजन में बढ़ता जहर

डॉ. दीपक कोहली

वर्तमान समय में विश्व की मानव जनसंख्या छह अरब से अधिक का आँकड़ा पार कर चुकी है। जिसमें लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या भारत में निवास करती है। इसके भरण–पोषण के लिए खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों का अत्यधिक प्रयोग हो रहा हैं फसलों के बचाव व पैदावार में कीटनाशी बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है। इनकी उपयोगिता को देखते हुए कीटनाशियों के निर्माण में भी नए आयाम हुए और इनका अत्यधिक उपयोग भी कृषि के क्षेत्र में हुआ। कीटनाशियों के अति उपयोग ने जहाँ पैदावार बढ़ाई है वहीं इनके अवशेष भोजन में रह जाने के कारण उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अति उपयोग से कीटनाशी अवशेष खाद्य चक्र में सम्मिलित होकर भूमंडल में सर्वव्यापी हो गए है।

आधुनिक कृषि में कीटनाशी जैसे–मॉनोक्रोटोफा/सुमैलाथिऑन, फॉस्फोमिडोन, फोरेट, क्वनिलफॉस, डाईमिथिओएट, एन्डोसल्फान, कार्बोरिल, रोगार आदि का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है। हमारे देश में 90000 मीट्रिक टन कीटनाशी दवाई प्रति वर्ष प्रयोग की जाती है, जिन्हें मुख्य रूप से फसलों, सब्जियों तथा फलों के कीटों को मारने के लिए जाता है। इन कीटनाशियों के बढ़ते उपयोग से कीट पतंगो से सुरक्षा तो हो जाती है, किंतु इनके अवशेष खाद्यान्नों में रह जाते हैं जो मुनष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। अगर देखा जाए तो सर्वप्रथम डी.डी.टी. का प्रयोग द्वितीय विश्व युद्ध में रासयनिक हथियार के रूप में किया गया और बाद में इसका प्रयोग कीट नियंत्रण में होने लगा तथा कुछ समय बाद इसका हानिकारक प्रभाव दिखने लगा।

भारत में जहाँ 1955 में मात्र 2000 मीट्रिक टन कीटनाशियों का प्रयोग होता था वहीं अब 90000 मीट्रिक टन से भी अधिक प्रयोग किया जा रहा है। क्षेत्रफल की दृष्टि से देखा जाए तो हमारे देश में कीटनाशी दवाओं का प्रयोग अभी भी मात्र 400 से 500 ग्राम प्रति हेक्टेयर है जो कि जापान में 12000 ग्राम प्रति हेक्टेयर, अमेरिका व जर्मनी में 3000 ग्राम प्रति हेक्टयेर और मैक्सिको में 750 ग्राम की तुलना में काफी कम हैं। लेकिन हमारे देश में इन दवाओं का प्रयोग उचित ढंग से नहीं किया जाता जिसके कारण इसके अवशेष खाद्यान्नों में रह जाते है। कीटनाशियों का प्रयोग कुछ फसलों में अधिक किया जा रहा है जैसे धान, सब्जियों एवं फलों पर इसका लगभग 85 प्रतिशत भाग प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में कुछ क्षेत्रों में कीटनाशियों का अंधाधुंध प्रयोग किया जाता है, जैसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, आंध्रप्रदेश, गुजरात तथा कर्नाटक आदि राज्यों में कीटनाशियों का प्रयोग अधिक होता है। जहाँ कीटनाशियों का प्रयोग अधिक हो रहा है वहाँ के खाद्यान्नों में रसायनों के अवशेष भी अधिक पाए जाते है जो मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। किसान सब्जियों एवं फलों की कटाई अथवा तोड़ाई के बाद अधिक दिनों तक सुरक्षित रखने के लिए और उसमें चमक बनाए रखने के लिए कीटनाशियों का प्रयोग करते है जिससे अपेक्षाकृत अधिक कीमत मिल

जाती है और लाभ भी अधिक होता है। फलों तथा सब्जियों में चमक बनाने के लिए कीटनाशियों का घोल बनाकर उसमें डुबा दिया जाता है जैसे–बैगन में फ्यूराडाइन का प्रयोग और गोभी का पीलापन हटाकर सफेद करने के लिए मैलाथियान कीटनाशी घोल का प्रयोग किया जाता है। इससे किसान या व्यापारी लाभ तो पा लेते है लेकिन ये उपभोक्ताओं को काफी हानि पहुँचाते हैं। अधिकतर कीटनाशी मनुष्य के शरीर पर घातक प्रभाव डालते है और रोगों से लड़ने की क्षमता कम करते है। इन्डोसल्फॉन, मोनोक्रोटोफॉस, कार्बोफ्यूरान, कार्बरिल, मैलाथियान, कार्बेन्डाजिम, लिन्डेन, ब्यूटाक्लोर, साइपरमेथ्रिन, क्विनॉलफास, आइसोप्रोट्यूरान, हेप्टाक्लोर आदि कीटनाशी रोग प्रतिरोधी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते पाए गए है। लिन्डेन व हेप्टाक्लोर के प्रयोग से बोनभैरो की बीमारी तथा मैलाथियान व पैराथियान के अधिक प्रयोग से लकवा तथा पागलपन की बीमारी उत्पन्न होती है। सब्जियों और फलों पर कीटनाशी रसायनों के अधिक प्रयोग से अनेक बीमारियाँ जैसे – ह्रदय रोग, लकवा, अनुवांशिक रोग, दौरा, एनीमिया आदि रोगों का प्रभाव होता है। फलों पर छिड़के जाने वाला कीटनाशी मैलाथियान मनुष्यों के न्यूरों तंत्र को प्रभावित करता है। एल्ड्रिन का प्रभाव रक्त कैंसर को जन्म दे सकता है तथा पी.सी.बी., बी.एस.सी. तथा डी. डी.टी. के प्रभाव से फेफड़े का कैसर व नुपंसकता हो सकती है। सेवों पर छिड़के जाने वाला कीटनाशी डेमीनोजाइड का थोड़ा सा अंश भी मानव शरीर में प्रविष्ट कर जाएं तो कैंसर को जन्म दे सकता है। इस प्रकार कीटनाशियों के अवशेष शरीर में एकत्रित होते रहते है। कार्बारिल, पैराथिल, 2–4 डी, लिन्डेन व डाइजिनान कीटनाशी दवायें जानवरों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं और मनुष्य में भ्रूण की मृत्यु, शारीरिक अपंगता तथा प्रजनन क्षमता को प्रभावित करती है।

हमारे खाद्य पदार्थ 60 प्रतिशत तक कीटनाशी के अवशेषों से दूषित पाए गए हैं और इसके 14 प्रतिशत में इनका स्तर अधिकतम अवशेष सीमा का मान्यस्तर (मैक्सिमम रेसिडयू लिमिट) से ज्यादा पाया गया है। इसके विपरीत विश्व के खाद्य पदार्थों में यह स्तर 21 प्रतिशत है, जिसका मात्र 02 प्रतिशत ही अधिकतर मान्य स्तर से ऊपर मिला है। यूरोपीय देशों में सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि कीटनाशी अवशेषों का स्तर खाद्य पदार्थों में, जिसमें दूध भी शमिल है, अधिकतम मान्य स्तर में काफी कम मिला है। कुछ कीटनाशी दूसरे देशों में प्रतिबंधित है किंतु भारत में उनका प्रयोग हो रहा है। मोनोक्रोटोफॉस जो अमेरिका में सन् 1988 से प्रतिबंधित हैं, भारत में सर्वाधिक बिकने वाला कीटनाशी है।

कीटनाशियों का अत्यधिक व अनुचित उपयोग वातावरण व मानव जाति के लिए हानिकारक साबित हुआ है, क्योंकि इनकी मारक प्रणाली पतंगों व बड़े जीवों के लिए एक जैसी है। ऑर्गेनोक्लोरो कीटनाशियों की कीटनाशिता सोडियम व पोटेशियम आयन संतुलन को असंतुलित करके स्नायुतंत्र को प्रभावित करती है। दूसरी तरफ ऑर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशी कई एंजाइमों को और मुख्यतः एसीटिल कोलोनी एस्टरेज को निष्क्रिय करते है। इसी तरह ऑर्गेनोकार्बोनेट भी एसीटिल कोलीनी एस्टरेज को निष्क्रिय कर तंत्रिका को बाधित करते है। आर्गेनोक्लोरो कीटनाशियों के मुख्य लक्षणों में उल्टियाँ, पैरास्थिसिया, संतुलन का खोना, दृष्टिहीनता और यकृत की कार्यक्षमता को प्रभावित करना शामिल है। इसी प्रकार ऑर्गेनोफॉस्फेट व ऑर्गेनोकार्बोनेट भी मनुष्यों में दौरें पड़ने जैसी, सांस की तकलीफ, दिल व गुर्दों पर प्रतिकूल प्रभाव व कैंसर जैसे लक्षणों को दर्शाते हैं।

कीटनाशियों के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए सबसे पहले इनका प्रयोग कम करना होगा इनके बारे में किसानों को जानकारी दी जानी चाहिए ताकि वे उनका उपयोग कम से कम करें और आवश्यकतानुसार ही करे। कीटनाशी दवाओं का छिड़काव करने के 15 से 20 दिन बाद फसल की कटाई या फलों की तोड़ाई करनी चाहिए ताकि उसके अवशेष सब्जी व फलों में न रह जाए। कटाई के बाद का छिड़काव लाभ कम व

दुष्प्रभाव छोड़ता है क्योंकि ऐसे मामलों में फलों और सब्जियों में अवशेषों का स्तर अधिकतम मान्य स्तर से ज्यादा पाया गया है।

अध्ययनों से पता चला है फलों, सब्जियों एवं अन्य कृषि–जन्य खाद्य पदार्थों की उचित धुलाई से उनकी सतह पर चिपके कीटनाशी काफी हद तक धुल जाते हैं। धोने के पश्चात उबालने से 10 से 100 प्रतिशत तक कीटनाशियों के अवशेषों से निजात पाई जा सकती है।

इसके अलावा जैविक कीटनाशियों जैसे नीम और तुलसी से बने कीटनाशी सूक्ष्म कीटों पर प्रभावशाली तो हैं ही, साथ ही मनुष्य व वातावरण के लिए भी लाभप्रद हैं। जैविक कीटनाशी जीवाणु के रूप में या उनके द्वारा निर्मित यौगिकों के रूप में भी बनाए जाते हैं। इन जैविक कीटनाशियों के निर्माण, वितरण व उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।

आनुवांशिक तकनीक से विकसित कीटरोधी बीजों व फसलों का उपयोग भी कीटनाशकों के प्रयोग को कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

कीटनाशियों का प्रयोग कम होने से खाद्य पदार्थों में उनके अवशेष कम होंगे। इसके अलावा वैकल्पिक उपायों यथा–जैविक कीटनाशियों का प्रयोग, कीटरोधी बीज तथा जैविक खेती (ऑर्गेनिक फार्मिंग) को अपनाकर खाद्य स्तर पर लाया जा सकता है। कुछ जैविक जैवनियंत्रण बनने लगे है जैसे–फफूँदीजन्य (ट्राइकोडर्मा, ऐस्परजिलस तथा पैसिलोमाइसिज आदि), जीवाणुजन्य जैसे स्यूजेमोनास व विषाणुजन्य आदि कीटनाशियों का प्रयोग करना चाहिए और गौमूत्र से बनायी गयी दवाएँ प्रयोग करनी चाहिए क्योंकि ये फसल सुरक्षा का काम तो करती ही है साथ ही पर्यावरण–हितैषी भी हैं। इस प्रकार इन उपायों को अपनाकर कीटनाशियों से भोजन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

○○○

5

पराजीनी बैंगन (बीटी बैंगन) : एक लाभकारी खोज

डॉ. विनय कुमार मिश्र, डॉ. डी. के. द्विवेदी एवं डॉ. यू. एस. मिश्रा

बीटी क्या है?

बीटी (बैसिलस थूरिंजेनेन्सिस) बीजाणु बनाने वाला एक जीवाणु है जो क्रिस्टल प्रोटीन (क्राई प्रोटीन) का निर्माण करता है। यह उत्पाद कई वर्ग के कीटों की जातियों के लिए नुकसानदायक हैं। बीटी के रूप में बैसिलस थूरिंजेनेन्सिस आविष (टॉक्सिन) जहरीला नहीं होता है। विश्व में इन जीवाणुओं की उपलब्धता हर जगह जैसे समुद्री किनारा, रेगिस्तान आदि के वातावरण में होती है। जीवाणु के 200 से ज्यादा प्रभेद क्राई प्रोटीन उत्पन्न करते हैं जो कीटों की अनेक जातियों के विरुद्ध कार्य करती हैं। बीटी क्रिस्टल कीटनाशक गुण (आई.सी.पी.) होते हैं लेकिन ये क्रिस्टल मानव व अन्य मित्र कीटों के लिए नुकसानदायक नहीं है। 150 से ज्यादा प्रकार के कीट बीटी के प्रति संवेदी होते हैं। क्रिस्टल केवल कीट के आहार नाल में कुछ विशिष्ट ग्राहक के होने पर जुड़ते हैं जो सभी प्रकार के कीटों में नहीं होता। चूंकि मानव व अन्य जानवर में ग्राही नहीं होते हैं अतः उन पर टॉक्सिन का प्रभाव नहीं होता है।

इस समय वैश्विक स्तर पर आनुवंशिक परिवर्तित या जी.एम. फसलों में आलू व कपास की खेती वृहद स्तर पर हो रही है।

बीटी का ऐतिहासिक परिदृश्य

बीटी का पृथक्करण एवं उसके उपयोग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को नीचे दिया जा रहा है–

- जापानी जैव वैज्ञानिक शिगेटाने ईशीवाटारी ने सोष्टो बीमारी से व्यापक रूप से मरने वाले रेशम के कीड़ों के कारण का अध्ययन किया और सर्वप्रथम सन् 1901 में स्पष्ट किया कि इस रोग का कारण केवल 'बैसिलस यूटीनाजेनेन्सिस' है। इन्होंने सन् 1901 में ही इसका नाम 'बैसिलस सोटा' रखा जिसे बाद में अस्वीकार कर दिया गया।
- अर्न्सट बरलिनियर ने सन् 1991 में मेडिटरेनियन फ्लोर मॉथ के मरने का कारण भी 'बीटी' बताया। इन्होंने जर्मनी के शहर यूरीन्जिया के नाम पर (जहां पर मॉथ की उपलब्धता थी) 'बैसिलस थूरिंजिएन्सिस' रखा।
- सन् 1920 में कृषकों ने बीटी का उपयोग कीटनाशी के रूप में किया। सन् 1938 में जापान ने बीटी जीवाणु आधारित कीटनाशी स्पोरीन का निर्माण व्यावसायिक रूप में प्रारंभ किया।
- बीटी आधारित अनेक उत्पाद बाज़ार में उपलब्ध हैं, लेकिन उनकी कुछ सीमाएं हैं। उदाहरण के लिए द्रव आधारित बीटी उत्पाद का छिड़काव करने पर वर्षा होने से घुल जाते हैं और तेज सूर्य की रोशनी में विघटित हो जाते हैं। प्रारंभ में बीटी द्वारा सभी कीट समान रूप से प्रभावित नहीं होते थे। उदाहरण के लिए सभी बीटी लेपिडॉप्टेरा समूह के कीट (मॉथ) ही ज्यादा प्रभावित होते थे। कुछ कीट जमीन व पौधों की जड़ों में भी रहते हैं जिन पर बीटी अवश्य प्रभावी होता है। चूंकि सिंथेटिक कीटनाशी सुगमता से उपलब्ध होते हैं और व्यापक रूप से कीटों का नाश करते हैं इसलिए बीटी की व्यापकता कम है।
- सन् 1956 में पोशकर्ता हैनय, फिट्ज जेमन व अंगस ने स्पष्ट किया कि बीटी का प्रभाव लेपिडोप्टेरा समूह के कीट (मॉथ) पर इसलिए प्रभावी है कि यह पैरा स्पोरल क्रिस्टल उत्पन्न करता है, अतः क्रिस्टल की संरचना, जैव रासायनिक गुण व सामान्य क्रिया का अध्ययन आवश्यक माना जाने लगा।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में बीटी का व्यवसायिकरण सन् 1958 में हुआ। सन् 1961 में बीटी का ई.पी.ए. के तहत पंजीकरण कीटनाशी के रूप में किया गया।
- सन् 1977 के पहले मात्र 3 बीटी प्रभेद की व्याख्या मिलती हैं जो केवल लेपिडोप्टेरा की कुछ जाति की सूंड़ी पर प्रभावी थी। सन् 1977 में पहली उपजाति को डिप्टेरन (मक्खी वर्ग) के लिए प्रभावी पाया गया और इसके बाद सन् 1983 में प्रभेद कोलियोप्टेरन (तितली वर्ग) के प्रति आविषालुता को पाया गया।
- सन् 1980 में जब सिंथेटिक कीटनाशी कीटों के प्रति प्रतिरोध प्रदर्शित होने लगे एवं वातावरणीय नुकसान होने लगा तो बीटी का उपयोग बढ़ने लगा। बीटी कार्बनिक उत्पाद है व चुने हुए कीटों का ही नाश करता है व वातावरण में भी देर तक नहीं रहता है। इस वजह से सहकारी व व्यक्तिगत रूप से बीटी पर अनुसंधान प्रारंभ हो गया।
- वर्तमान में हजारों किस्म के बीटी प्रभेद बाज़ार में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ ऐसे उत्पाद है जो डी.एन.ए. द्वारा विशिष्ट क्रिस्टल बनाने की क्षमता रखते हैं।

बीटी कैसे कार्य करता है?

बीटी जीन–आधारित नुकसानदायक क्रिस्टल प्रोटीन है जो कीटों द्वारा भक्षण करने पर उनको मार देता है। बीटी कीट के उच्च पी.एच. मान वाली आहारनली या आंत के अंदर घुल जाता है और सक्रिय हो जाता है। इसके बाद आविष (टॉक्सिन) कीट की आंत कोशिका को संक्रमित करता है जो उन पर बनी धारियों को छेदकर पहुँचता है। बीटी बीजाणु गट के आस–पास फैल जाते हैं व अपना जमाव प्रारंभ करते हैं जिससे मात्र 2 दिन में ही कीट मरने लगते हैं। कभी–कभी टॉक्सिन तुरंत कीट को नहीं मारता है बल्कि शोधित पौधा को नुकसान करना बंद कर देता है। बीटी जीवाणु दूसरे कीट को न तो नुकसान पहुँचाता है और नहीं स्वयं महामारी का रूप धारण करता है।

बीटी का कार्य कई चरणों में पूरा होता है–

1. पहले कीट बीटी क्रिस्टल व बीजाणु भक्षण करता है।
2. टॉक्सिन विशिष्ट ग्राहक के साथ गट में जुड़ता है व सुंडी भोजन करना बंद कर देती है।
3. क्रिस्टल कीट के गट वाली दीवार को काट देता है जिससे बीजाणु व सामान्य गट जीवाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।
4. बीजाणु व जीवाणु के तेजी से बढ़ने के कारण कीट मर जाते हैं।

बीटी कार्य विशिष्ट होता है। बीटी के विभिन्न प्रकार के प्रभेद, विभिन्न प्रकार के ग्राहक के प्रति भिन्न होते हैं। बीटी की विषालुता का आधार ग्राहक जो गट को नुकसान पहुँचाता है के जुड़ाव से है। प्रत्येक कीट अलग–अलग ग्राहक वाले होते हैं जो निश्चित टॉक्सिन प्रोटीन से मिलते हैं जैसे कि ताला व चाभी। अतः कृषकों को उत्पाद का चुनाव विशिष्ट टॉक्सिन प्रोटीन की क्रिया को समझकर करना चाहिए। इससे दूसरे समूह के कीट बिल्कुल सुरक्षित भी होगें।

पराजीवी बैंगन

वर्तमान समय में बैंगन ऐसी फसल है जिसमें कीड़ों को मारने के लिए सबसे ज्यादा कीटनाशियों का उपयोग किया जाता है। बैंगन का सबसे ज्यादा नुकसानदायक कीट फल व तनाबेधक (ल्यूसीनोड़स आरबेनैलिस) हैं। इस कीट का प्रकोप सभी बैंगन उत्पादक राज्यों में देखा जाता है। इसके प्रकोप से पौध का विकास रुक जाता है व तना तथा फलों में छेद करने की वजह से नुकसान का स्तर ज्यादा रहता है। फलों में छेद का स्तर 95 प्रतिशत होता है जो बाज़ार–योग्य नहीं होते हैं। अगर व्यावसायिक नुकसान को

देखें तो लगभग 70 प्रतिशत होता है। किसान उत्पादक कीटों को नियंत्रित करने के लिए बार–बार कीटनाशी का प्रयोग करते हैं। चूंकि तना व फल बेधक कीट अंदर होता है अतः बाह्य रूप से प्रयोग किए जा रहे कीटनाशी से लाभ नहीं होता है। प्रकोप को देखते हुए किसान छिड़काव की संख्या व कीटनाशी की सांद्रता बढ़ाता जाता है। इससे उत्पादन लागत बढ़ती है और साथ ही वातावरण भी प्रदूषित होता है। इतना ही नहीं फलों पर पड़े कीटनाशी के अवशेष मानव के लिए विषालु बने रहते हैं जिनसे स्वास्थ्य सुरक्षा को खतरा रहता है। इस कीट के व्यापक प्रकोप को देखते हुए कीट–प्रतिरोधी जाति के विकास की योजना बनाई गई लेकिन वर्तमान में एक भी जाति तना व फलबेधक के प्रति प्रतिरोधी नहीं है। अतः वैज्ञानिकों ने जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से बैंगन की ऐसी जाति विकसित करने की योजना बनाई जो फलबेधक के प्रति प्रतिरोधी हो। बीटी कपास के समान ही बीटी बैंगन का विकास रूपांतरण प्रक्रिया के तहत किया गया और भारत में सन् 2008 में प्रथम बायोटेक क्रॉप के रूप में कपास को 7.6 मिलियन हेक्टेयर में उगाया गया। बीटी बैंगन में क्राई 1 एसी. जीन को डाला गया है जो तना व फलबेधक कीट के प्रति अवरोधी गुण प्रदर्षित करता है। क्राई 1 एसी. जीन का स्रोत मृदा जीवाणु बैसिलस थूरिंजिएन्सिस है। जब इसे बैंगन के तना व फलबेधक कीट खाते हैं तब कीट के क्षारीय गट में जीन सक्रिय हो जाता है और बीटी के जीवाणु टूटकर गट में फैल जाते हैं। तना व फल–बेधक कीट कुछ ही दिनों में मरने लगते हैं।

भारत में बीटी बैंगन की स्थिति

बीटी बैंगन का विकास महाराष्ट्र राज्य में पंजीकृत एक सीड कंपनी (महिको) द्वारा किया गया है। इसके लिए कंपनी डी.एन.डी. कॉन्सट्रक्ट जिनमें क्राई 1 ऐसी. जीन, सी.ए.एम.पी. उत्प्रेरक व चयनित जीन चिन्ह्न एन.पी.टी तथा ए.ए.डी. होता है, को सम्मिलित किया है। यह बैंगन के बीजपत्रक को परिवर्तित करता है। शिष्ट प्रौद्योगिकी तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, तमिलनाडु यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर साइंसेज, धारवाड़ को उपलब्ध कराई। इसमें घटक ई. ई.–1 का पश्च संकरण मुक्त–परागित बैंगन की जाति से किया गया है। महिको ने स्वेच्छा से फिलीपीस एवं बांग्लादेश के सहकारी शोध संस्थानों को भी यह प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराई है।

विभिन्न जीन का प्रयोग कर कई सरकारी व गैरसरकारी संस्थान 'बीटी बैंगन' का विकास कर रहे हैं। राष्ट्रीय शोध केंद्र जैव प्रौद्योगिकी नई दिल्ली ने भी क्राई एफ.ए.–1 जीन का प्रयोग कर 'बीटी बैंगन' जाति का विकास किया है। विकसित तकनीक बीजो शीतल विभाजन कंपनी व कृषि बीजधन कंपनी को भी उपलब्ध कराई गई। भारतीय वागवनी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर भी क्राई–1 जीन का प्रयोग कर 'बीटी बैंगन' जाति का विकास कर रहे हैं।

'बीटी बैंगन' के उत्पादक व उपभोक्ता को लाभ की संभावना

पराजीनी 'बीटी बैंगन' की घटक ई.ई.–1 पारित जाति का विकास भारतीय बीज कंपनी एंव बायोटेक कंपनी महिको द्वारा सरकारी शोध संस्थानों को सम्मिलित कर विकसित किया गया है। लगातार 9 वर्षों तक शोध उपरांत 'बीटी बैंगन' भारत की पहली रूपांतरित खाद्य फसल होगी जिसका अनुमोदन व्यावसायिक रूप से खेती करने के लिए किया जाएगा। भारतीय नियंत्रक प्राधिकरण, जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रुवल कमेटी ने वातावरणीय दृष्टिकोण से भारत में उसका अनुमोदन कर दिया है लेकिन इसका व्यावसायिक दृष्टिकोण से उत्पादन हेतु पर्यावरण व वन मंत्रालय के पास 2010 से लंबित है। 'बीटी बैंगन तकनीकी' को महिको ने सरकारी संस्थानों को स्वेच्छा से कृषकों को लाभ देने हेतु उपलब्ध कराई। इससे साधन–विहीन कृषकों व छोटे व मझोले कृषकों को ज्यादा लाभ होगा। तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय एवं यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज, धारवाड़ ने सफलतापूर्वक घटक ई.ई.–1 जीन

भारत में 'बीटी बैंगन' के विकास का इतिहास

वर्ष	विवरण
2000	रूपांतरण व ग्रीन हाऊस प्रजनन प्रारंभ।
2001–2002 2002–2004	ग्रीन हाऊस में 'बीटी बैंगन' के पौध का विकास, वृद्धि व बीटी की सार्थकता का प्राथमिक अध्ययन। निर्धारित प्रक्षेत्र में प्रयोग द्वारा परागकण प्रसरण, जमाव, जुझारूपन व खरपतवार की स्थिति, जैव रासायनिक, विषालुता व प्रत्यूर्जता का अध्ययन किया गया। इसके बाद लगातर पश्च संकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।
2004	एग्री बॉयोटेक्नोलाजी सपोर्ट प्रोग्राम के तहत आपसी तालमेल से यू.एस.ए.आई.डी. महिको ने तकनीकी को तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय (तलिनाडु), एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी धारवाड़ व भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान (वाराणसी) को उपलब्ध कराया जिससे 'बीटी बैंगन' की मुक्त परागित किस्म तैयार की जाए। पश्च संकरण द्वारा ई.ई.आई. का प्रयोग कर तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय (तमिलनाडु) ने 4 जातियों व यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर साइंसेज न 6 जातियाँ विकसित की है।
2004–2006	महिको नें जैव संबंधी आँकड़े जेनेटिक इंजीनियर्स अनुमोदन कमेटी को सौंपे व वृहद् परीक्षण के लिए अनुमति मांगी। • जी.ई.ए.सी. ने बैंगन के जैव सुरक्षा आँकड़ों को जी.ई.ए.सी. वेब साइट पर उपलब्ध कराया। • जी.ई.ए.सी. ने एक उपसमिति का गठन किया जो सामाजिक रीतियों को स्पष्ट करेगी। • सिविल सोसाइटी द्वारा दाखिल पी.आई.एल. याचिका पर सुनवाई करते हुए जेनेटिकली मॉडिफाइड क्रॉप्स का क्षेत्र परीक्षण रुकवा दिया।
2007	उपसमिति ने अपना व्यौरा सौंपा कि निर्धारित परीक्षण के समय लिए गए आँकड़ों के साथ जैव सुरक्षा संबंधी सात अन्य अध्ययन करे। • सुप्रीम कोर्ट ने जेनेटकली मॉडिफाइट फसल के प्रक्षेत्र परीक्षण पर प्रतिबंध समाप्त किया जिसमें पृथक्करण को आवश्यकता बताया। • जी.ई.ए.सी. वृहद् परीक्षण की संस्तुति दी। • जी.ई.ए.सी. के दिशा निर्धारण के अनुसार भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान (वाराणसी) को वृहद् परीक्षण की जिम्मेदारी दी गई कि 'बीटी बैंगन' का परीक्षण करे और वर्ष 2008 में कुल 111 शोध केंद्रों पर परीक्षण करे।
2009	जनवरी महीने में वृहद् परीक्षण के आँकड़े दिए गए। कई लोगों द्वारा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आवाज़ उठाने के कारण जी.ई.ए.सी. ने दूसरी उपसमिति का गठन करने का निर्देश दिया ताकि आँकड़ों का मूल्यांकन किया जा सके।
2009, 14 अक्टूबर	'बीटी बैंगन' के ई.ई.–1 जीन आधारित आँकड़ों के अनुसार उपसमिति ने अपनी व्याख्या प्रस्तुत की।
2009, 15 अक्टूबर	कृषि राज्य मंत्री इनवायरमेंट एंड फॉरेस्ट्री ने पूरे देश से तालमेल बनाने की अनुशंसा की।
2010 फरवरी	अंतिम निर्णय अभी आना बाकी था।

को स्थानीय मुक्त–परागिक किस्मों में स्थानांतरित किया। ये दोनों संस्थान 'बीटी बैंगन' का परीक्षण व मूल्यांकन विभिन्न वातावरणीय परिवेश में कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस तकनीकी को फिलीपींस विश्वविद्यालय, बांग्लादेश कृषि शोध संस्थान एवं ईस्ट–वेस्ट बांग्लादेश बीज कंपनी को दिया गया है जिससे बीटी आधारित बैंगन की जाति विकसित की जा सके।

क्राई–1 एसी. जीन आधारित बैंगन की जाति में कीटनाशक गुण हैं तथा पोषण के दृष्टिकोण से सामान्य बैंगन की ही तरह है। आवश्यकता, लाभ, सुरक्षा व सहभागिता पर आयोजित 7वीं पेसिफिक रिम कांफ्रेंस ऑन बायोटेकनोलॉजी, कोलकाता विश्वविद्यालय एवं ए.आई.सी.बी.ए. ने संयुक्त रूप से नेशनल एग्रीकल्चर साइंस कॉम्पलेक्स, नई दिल्ली में कार्यक्रय आयोजित किया। परिचर्चा का परिणाम यह रहा कि कृषकों द्वारा 70 प्रतिशत कम कीटनाशी का प्रयोग बैंगन के तना व फलबेधक कीट के लिए करना पड़ेगा। पूर्ण कीट सुरक्षा की बात करें तो 42 प्रतिशत कम कीटनाशी प्रयोग करना पड़ेगा। अगर कृषक 'बीटी बैंगन' का प्रयोग करता है तो उपज में 37 प्रतिशत वृद्धि होगी। सामान्य संकरों की तुलना में बीटी आधारित संकर से 116 प्रतिशत बाज़ार–योग्य फल प्राप्त होगा। इस तकनीकी के प्रयोग से बैंगन उत्पादक को रु. 16,000/–, से रु. 19,000/– तक प्रति एकड़ लाभ होगा और यह लाभ पूरे भारत में 2000 करोड़ रुपये होगा। यही नहीं इससे 30000 टन अतिरिक्त बैंगन की उपज होगी। तना व फलबेधक कीट पर आने वाले खर्च में कटौती कुल 47.00 करोड़ रुयये की होगी तथा अनुमानित शुद्ध लाभ रुपये 11,029/– प्रति हेक्टेयर होगा। इससे प्राप्त होने वाला अन्य लाभ 3 प्रतिशत होगा। इस तकनीकी का स्वीकार/ग्रहण स्तर लगभग 15 प्रतिशत होगा। अगर 'बीटी बैंगन का स्वीकार/ग्रहण स्तर संकर जाति के रूप में होता है तो देश में अतिरिक्त उपज 119 हजार टन प्राप्त होगी जिससे तना व फलबेधक कीटनाशी पर खर्च में 187 करोड़ रुपये की बचत हागी, शुद्ध बचत 44,117/– रुपये प्रति हेक्टेयर और बैंगन के दाम में 15 प्रतिशत की कमी आएगी। अगर देश में संकर 'बीटी बैंगन' को अपनाया जाता है तो राष्ट्रीय लाभ सीधे–सी ो 577 करोड़ रुपये से 2387 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष क बीच होगा तथा शेष लाभ उत्पादक को होगा। संक्षेप में स्पष्ट किया जाए तो 'बीटी बैंगन' को अपनाने से अनेक लाभ जैसे– कृषक की आय बढ़ेगी, उपभोक्ता को कम लागत पर उत्पाद उपलब्ध होगा, खादय सुरक्षा सुनिश्चित होगी व सुधेरगी, स्वास्थ संबंधी समस्याएं दूर होगी तथ वातावरणीय प्रदूषण से मुक्ति मिलेगी।

'बीटी बैंगन' तथा तना व फलबेधक के विरुद्ध 9 प्रतिशत कीटों को मारता है। इतना ही नहीं 10 प्रतिशत शुद्ध उपज मिलेगी जबकि बिना 'बीटी बैंगन के मात्र 30 प्रतिशत प्राप्त होती है। बहुक्षेत्रीय प्रक्षेत्र मूल्यांकन से स्पष्ट है कि बिना 'बीटी बैंगन' की फसल पर तना व फलबेधक कीट के नियंत्रण हेतु कीटनाशी की तुलना में 'बीटी बैंगन' में 77 प्रतिशत कम कीटनाशी का प्रयोग करना पड़ेगा और बैंगन में लगने वाले सभी कीटों के नियंत्रण में 42 प्रतिशत कम कीटनाशी लगेगा। उत्पादकों को कीटनाशी के बार–बार प्रयोग की बाध्यता भी समाप्त होगी और देश को 400 मिलियन यू.एस. डॉलर का लाभ प्रतिवर्ष होगा। बीटी उत्पाद वातावरण व मानव दोनों के लिए सुरक्षित हैं। इन्वायरनमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी (ई.पी.पी.) के अनुसार बीटी को अपनाने से मानव स्वास्थ्य को किसी प्रकार का नुकसान नहीं देखा गया है। ई.पी.पी. ने स्पष्ट किया है कि बीटी, खादय अवशेषों से मुक्त, धरातल के जलीय प्रदूषण से मुक्त, लुप्तप्राय जातियों को चिह्नित करना आदि से संबंध रखता है। बीटी बहुधा झीलों के किनारे, नदियों के किनारे व बहते जल स्रोतों के पास उपलब्ध होते हैं जो जंगली जीव जैसे–स्तनधारी, चिड़िया व मछलियों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता है।

• अगर मानव 100 मिलीग्राम प्रतिदिन बीटी का सेवन मुख से 3–5 दिनों तक करे तो भी हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ता हैं अनेक प्रकार से किए गए शोध अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि बीटी स्तनपायी जीव मानव आदि के आहार नाल में बना नहीं रहता है।

• बीटी किसी प्रकार से तेज विषालुता या कारसेनोजेनिक प्रभाव नहीं डालता है। स्तनधारी में जनन् संबंधी व नवजात के पैदा होने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं डालता है।

• बीटी वातावरण में तुरंत टूट/समाप्त हो जाता है। अतः बीटी से धरातल के जल को कोई नुकसान नहीं है। बीटी सूर्य की पराबैंगनी किरणो से भी टूट/समाप्त हो जाता है।

• यद्यपि 50 वर्षों से प्रयोग हो रहे बीटी से मात्र 2 नुकसान पर्यावरण संरक्षण एजेंसी को प्राप्त हुए हैं जो प्रल्यूर्जा (एलर्जी) उत्पन्न करते हैं। इसमें पहला विवरण पहले से रोगग्रसित व्यक्ति में पाया गया। इसी प्रकार दूसरा भी पहले से खादय प्रत्यूर्जन के प्रति संवेदनशील था। परीक्षण में यह भी पाया गया कि बीटी बनाने वाले अन्य पदार्थ में कार्बोहाइड्रेट व नियंत्रक होता है, उससे भी खादय प्रत्यूर्जन उत्पन्न होता है।

सारांश

उल्लेखनीय है कि बीटी कपास की खेती भारत में 9.4 मिलियन हेक्टेयर में की जा रही है जो कुल कपास की खेती का 80 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि जैव प्रौद्योगिकी देश से गरीबी व भुखमरी दूर करने में सहायक है। अतः 'बीटी बैंगन' का विकास जैव प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित पहली खादय फसल होने का गौरव प्राप्त करेगी। इस तकनीकी का लाभ कृषकों, उपभोक्ताओं तथा भारत को होगा। अगर देश में 'बीटी बैंगन' की खेती होती है तो अनेक लाभ है जिनमें 80 प्रतिशत कीटनाशी की बचत है। 'बीटी बैंगन' के उपयोग से बाज़ार–योग्य फल ज्यादा मिलेंगे। आनुवंशिक इंजीनियर्स अनुमोदन समिति (जेनेटिक इंजिनियरिंग एप्रुवल कमेटी) ने अपनी 97वीं संगोष्ठी में 14 अक्टूबर 2009 को 'बीटी बैंगन' की ई.ई.–1 उत्पाद जिसे महिको ने विकसित किया है, को व्यावसायिक रूप से उगाने हेतु अनुमोदित किया, जिसमें यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज, धारवाड़ एवं तलिनाडु कृषि विश्वविद्यालय कोयंबटूर भी शामिल होगा।

○○○

6

भारत में कागज़ उद्योग एवं पर्यावरण प्रदूषण

कौशलेंद्र प्रताप मिश्र एवं अणिमा वशिष्ठ

प्राचीन काल से आज तक भारत संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्र में विश्व गुरू माना जाता रहा है। यहाँ पर तालपत्रों, ताड़पत्रों व भोजपत्रों को लेखन कार्य में प्रयुक्त किया जाता था। परंतु वर्तमान समय में लेखन कार्य हेतु कागज़ का ही प्रयोग किया जाता है। कागज़ दैनिक उपयोग की एक महत्वपूर्ण वस्तु हो गई है परंतु जब हम कागज़ के उदय के संदर्भ में सोचते हैं तो हमारे मस्तिष्क में मिस्र एवं नील नदी का विचार उत्पन्न होता है। नील नदी वह है जहाँ की कच्छ भूमि पर साइप्रस पपायरस थिराइव्ड नामक पौधा पाया जाता था। मिस्रवासी इस पौधे के तने को काटकर छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में करके नील नदी के पानी में भिगोकर सुखाते थे जिससे तने नरम पड़ जाते और फिर इन तनों को चटाई के रूप में संगठित करके एक पतले पाल के रूप में तैयार कर सर्य की किरणों में सुखाया जाता था और इस प्रक्रिया में यह सूखकर कड़े और हल्के हो जाते थे जिससे उस पर लिखने व लाने–ले जाने में सुविधा हो जाती थी मिस्रवासी, रोमवासी एवं यूनानी इसका प्रयोग आध्यात्मिक एवं कलात्मक प्रयोगों को संरक्षित करने के लिए करते थे। इस प्रकार पपायरस नाम से 'पेपर' शब्द का उदय हुआ। यह भी पता लगाया गया कि मय सभ्यता के लोगों ने भी कुछ इसी तरह के आविष्कार किए थे जिनमें वे अपने अभिलेखों को सुरक्षित रखते थे।

कागज़ की उत्पत्ति

पेपर का आविष्कार जिसे आज हम जानते हैं वह "त साइ लून" नामक किन्नर की देन है जो हान वंश के राजा हो–टिस के राज दरबार में रहता था। वह विभिन्न पदार्थों के प्रयोगों द्वारा पौधों के रेशों को भिगोकर तब तक मुलायम करता था जब तक कि एक–एक रेशा अलग नहीं हो जाता था। अलग किए हुए रेशों को पानी में भिगोकर एक बड़े पात्र में रख दिया जाता था जिससे उसके रेशे पात्र की परत में चिपक जाते थे और परत के ऊपर लिपटे रेशों को सुखाकर पेपर बना दिया जाता था। यह पेपर पतला, लचीला एवं मज़बूत तथा काफी चिकना होता था। इस प्रकार "त साइ लून" का सम्मान एक 'कागज़ के संत' के रूप में होता था। पेपर बनाने की यह प्रक्रिया चीन द्बारा तीसरी शताब्दी तक गुप्त रखी गई फिर यह वियतनाम और तिब्बत में फैल गई। चौथी शताब्दी में कोरिया तथा छठी शताब्दी में जापान में इसका विस्तार हुआ। फिर यह धीरे–धीरे एशिया और नेपाल में फैल गई। 715 ई. में टैंग वंश का टैरस नामक नदी के तट पर मुस्लिम शासकों से युद्ध हुआ। इन मुस्मिल शासकों ने चीनी कैंपों पर कब्ज़ा कर लिया और समस्त कागज़ उत्पादन कर्ताओं को कब्ज़े में ले लिया और उन्हें समरकंद ले गए जहाँ मुस्लिमों ने उनसे कागज़ बनाने की प्रक्रिया का ज्ञान लिया, जिससे समरकंद कागज़ उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र बन गया और वहाँ से यह प्रक्रिया बगदाद दमाश्क और कैरो पहुँच गई। दक्षिण अफ्रीका के मूरों ने स्पेन और पुर्तगाल पर आक्रमण कर पेपर उत्पादन प्रक्रिया को 12वीं शताब्दी में यूरोप पहुँचा दिया।

इस प्रकार कागज़ का विकास मानव सभ्यता की सबसे बड़ी खोज थी जिसने मानवीय विकास में बहुत बड़ा योगदान किया। कागज़ किसी भी उद्योग (सार्वजनिक व निजी) शासन, प्रशासन, शिक्षण कार्य व अन्य सभी प्रकार की सेवाओं के लिए आदि और अंत दोनों का कार्य करता है। वर्तमानकाल, भूतकाल व भविष्यकाल की सभी योजनाएं कागज़ के ही अधीन है। कागज़ के उदय के परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व की कार्य प्रणाली कागज़ पर ही आश्रित है और इसके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वर्तमान में कागज़ दैनिक उपयोग की एक महत्वपूर्ण वस्तु है। शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में कागज़ का बहुत अधिक महत्व है। किसी भी राष्ट्र में शिक्षा, सभ्यता, उद्योग आदि के क्षेत्रों में हुई प्रगति का ज्ञान प्रति व्यक्ति कागज़ की खपत से चलता है और हमारे देश में प्रति व्यक्ति कागज़ की खपत में ठहराव–सा आया हुआ है।

भारत में कागज़ उद्योग

भारत में प्रथम पेपर मिल पश्चिम बंगाल प्रांत के सीरामपुर नामक स्थान पर सन् 1812 ई. में स्थापित की गई थी। यह मिल मुख्तया घास–फूस एवं जूट को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करती थी। दूसरा सफल प्रयास सन् 1879 ई. में उत्तर प्रदेश के लखनऊ मंडल में अपर इंडिया पेपर मिल्स लि., लखनऊ की स्थापना के रूप में किया गया जो ख्याति प्राप्त पेपर के उत्पादन में सक्रिय थी और जो अब बंद हो चुकी है। पेपर उद्योग में व्यापक स्तर पर मशीनीकरण, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग सन् 1905 ई. में शुरू किया गया। भारत में मांड़ एवं कागज़ उद्योग आज की स्थिति में एक स्थापित उद्योग के रूप में जाना जाता है।

भारत विश्व में कागज़ उद्योग का 15वाँ सबसे बड़ा राष्ट्र है। यह उद्योग लगभग 1.5 करोड़ लोगों को रोज़गार एवं भारत सरकार के खाते में लगभग 25 अरब रुपये का वार्षिक योगदान करता है। अतः इसकी महत्ता को देखते हुए इसे देश की 35 प्रमुख उद्योगों की सूची में रखा गया है। सन् 1951 ई. के समय भारत में कुल 17 कागज़ उद्योग स्थापित थे और विगत वर्षों में 515 इकाइयाँ स्थापित की गई थीं। ये इकाइयां आज भारत में व्यापक स्तर पर पेपर एवं पेपर बोर्ड के उत्पादन में निरंतर कार्यरत हैं। वैश्विक स्तर पर भारतीय पेपर उद्योग का कुल उत्पादन 6 मिलियन टन वार्षिक है जोकि निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है। सन् 2010 में कुल माँग मात्र 8 मिलियन टन थी जिसका 2020 में 13 मिलियन टन पहुँचने का अनुमान है।

पेपर उद्योग में कुल सफल घरेलू उत्पाद में विकास दर 6.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। भारतीय पेपर उद्योग विश्व में सबसे तेजी से बढ़ते उद्योगों की श्रेणी में अग्रसर है। वर्ष 2015–16 तक इस उद्योग का कुल आर्थिक विकास 13.95 मिलियन टन वार्षिक होने का अनुमान है। प्रति व्यक्ति पेपर खपत 1 कि.ग्रा. बढ़ने का अनुमान है। 'सी.ए.जी.आर.' रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2012–13 तक पेपर की खपत 8.4 प्रतिशत और विकास 9 प्रतिशत होने की संभावना है।

इस प्रकार भारत का पेपर उद्योग निरंतर नियमित एवं सकारात्मक सोच का समायोजन है। पेपर दैनिक उपयोग की एक महत्वपूर्ण वस्तु है। चाहे व्यक्ति साक्षर हो या निरक्षर, पेपर का प्रयोग सभी करते हैं। किसी भी उद्योग, शासन, प्रशासन व शिक्षण कार्य आदि सभी में पेपर प्रयुक्त होता है और यह आदि और अंत दोनों का कार्य करता है। संपूर्ण विश्व की कार्य प्रणाली कागज़ पर ही आश्रित है। अतएव पेपर के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

पेपर उद्योग एवं पर्यावरण

पेपर उद्योग एक रासायनिक क्रियात्मक उद्योग है जिसके पर्यावरण पर गंभीर दुष्प्रभाव होते है जो पेपर उद्योगों से प्रदूषित पदार्थ प्राप्त होते हैं वे निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किए जाते हैं– (1) द्रव्यक (तरल) प्रदूषक पदार्थ, (2) वायु प्रदूषक पदार्थ, (3) ठोस प्रदूषक पदार्थ, (4) ध्वनि प्रदूषक पदार्थ। पेपर उद्योग को पर्यावरणिक समस्याओं का जटिल सामना करना पड़ता है। इन उद्योगों में प्रदूषण नियंत्रण एक अत्यंत कठिन प्रक्रिया है जोकि निम्न प्रकार से होती है– इन उद्योगों में रासायनिक पूर्ति आर्थिक नहीं होती है इसलिए काले द्रव्य एवं चूने का अवशिष्ट पदार्थ अग्नि द्वारा नहीं जलाया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि 30 टन प्रतिदिन वाले पेपर उद्योगों में प्रदूषण 200 टन

प्रतिदिन वाले उद्योगों से तीन गुना अधिक होता है। खराब हुए पेपरों में उनके मुकाबले कम ऊर्जा का क्षय होता है एवं पर्यावरण को अल्प स्तर पर क्षति होती है।

विश्व के कुल क्षेत्रफल का 50 प्रतिशत भाग वनाधारित है जिसमें कुल वन का 50 प्रतिशत या तो साफ किया जा चुका है या जलाया जा चुका है तथा 80 प्रतिशत की चिंताजनक क्षति हो रही है। औद्योगिक लकड़ी का उपयोग 42 प्रतिशत पेपर बनाने में किया जा रहा है। पेपर उद्योग ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करने वाला चौथा सबसे बड़ा कारक है। यदि संयुक्त राज्य के कार्यालयों में पेपर का उपयोग 10 प्रतिशत कम हो जाए तो इससे लगभग 1.6 मिलियन टन ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन कम होगा जो 28000 कारों को सड़क से हटाने के समतुल्य होगा। वर्ष 2003 में कार्यालयों में उपयोग किए जाने वाले पेपर का मात्र 48.3 प्रतिशत पुनश्चक्रण (रिसाइकिलिंग) में प्रयोग किया गया। संयुक्त राज्य की पल्प पूर्ति का 37 प्रतिशत प्राप्त पेपर के रूप में प्रयोग होता है। पुनश्चक्रित (रिसाइकिल्ड) पेपर की माँग आगामी 10 वर्षों में प्रतिवर्ष 1.5 मिलियन टन बढ़ जाएगी।

काष्ठ लगुदी (वुड पल्प) की ब्लीचिंग (पर्यावरण के संदर्भ में) : क्लोरीन और क्लोरीन की यौगिक काष्ठ लुगदी का उपयोग बिरंजन किये जाते हैं। इसके लिए विशेषतः केमिकल पल्प क्राफ्ट प्रासेस या सल्फाइट प्रोसेस बनाया जाता है जो पर्याप्त मात्रा में डाईआक्सिन का उत्पादन करता है। बहिःस्रावों (एफ्ल्यूऐन्ट्स) का पुनश्चक्रण (रिसाइकिलिंग) करके और इसे जलाने में जैव उपचारण (बायोरिमोडिएशन) तालाब तथा कम नुकसानदेह अभिकर्मकों का विरंजन प्रक्रिया में प्रयोग जल–प्रदूषण को कम करता है। क्राफ्ट प्रक्रिया तथा सल्फाइट प्रक्रिया में गंधक के यौगिकों का प्रयोग किया जाता है। सल्फर डाईआक्साइड जल में घुलनशील होती है तथा अम्ल वर्षा (एसिड रेन) का कारण बनती है। वर्ष 2006 में कनाडा में पल्प तथा पेपर उद्योग से पर्यावरण में 60,000 टन सल्फर आक्साइड पहुँची जो कनाडा के कुल उद्योग द्वारा उत्पन्न की जा रही इस विषैली गैस का 4 प्रतिशत थी। इसके अतिरिक्त जो अन्य रसायन इस उद्योग द्वारा जल और वायु को प्रदूषित करते हैं, वे प्रमुखतः निम्न है–

(1) कार्बन मोनो ऑक्साइड
(2) अमोनिया
(3) नाइट्रोजन ऑक्साइड
(4) मर्करी
(5) नाइट्रेट
(6) मेथनॉल
(7) बेंजीन
(8) बाष्पशील वोलैटाइल ऑर्गेनिक यौगिक क्लोराफार्म

यांत्रिक लुगदी (मैकेनिकल पल्प) एवं कागज–काष्ठ की लुगदी मुख्यतः लकड़ी को पीसकर बनाई जाती है। इसमें क्राफ्ट व सल्फाइट मिलों की अपेक्षा कम रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इन मिलों से मुख्यतः रेजिन नाम को ऑर्गेनिक रसायन उत्पन्न होता है जो पर्यावरण को प्रदूषित करता है। लगभग एक टन पेपर के उत्पादन, छपाई, वितरण एवं निस्तारण में 200 कि.ग्रा. (440 पौंड) कार्बन का उत्सर्जन होता है। सामान्य रूप से यह भ्रांत धारणा है कि सभी मिलें पल्प और पेपर मिलें होती हैं। यह केवल एकीकृत मिलों के लिए ही सत्य है जहाँ एक ही परिसर में पल्प एवं पेपर का उत्पादन किया जाता है।

भारतीय पेपर उद्योग विश्व के पेपर और पेपर बोर्ड के 1/25 तथा उत्पादन का 1.6 प्रतिशत है। इस उद्योग का अनुमानित आवर्त (टर्न ओवर) 25,000 करोड़ रुपये है जिसका राजकोष में 2918 करोड़ रुपये का योगदान है। इस उद्योग में प्रत्यक्ष रूप से 1.5 करोड़ लोगों को रोज़गार प्राप्त है। भारत सरकार ने इस उद्योग को जुलाई 1997 ई. से लाइसेंस–मुक्त कर दिया है। अधिकांश पेपर मिलें काफी समय से कार्य कर रही है तथा उन मिलों की प्रोद्योगिकी में काफी सुधार हुआ है। मिलों में कच्चे माल के रूप में विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है, जैसे– लकड़ी, बाँस, पुनश्चक्रित रेशे (रिसाइकिल्ड फाइबर), बैंगास, भूसा, चावल की भूसी आदि। अनुमानतः 35 प्रतिशत रासायनिक लुगदी (केमिकल पल्प) 44 प्रतिशत पुनश्चक्रित रेशे और

21 प्रतिशत अनाज के अवशेषों से पेपर निर्मित किया जाता है। वर्ष 2007–08 में इस उद्योग की क्षमता 8 मिलियन टन थी तथा वर्तमान में 9.3 मिलियन टन है। इस वित्तीय वर्ष में पेपर व पेपर बोर्ड का उत्पादन 7.6 मिलियन टन अनुमानित है। कुछ समय से कागज़ की माँग लगभग 8 प्रतिशत बढ़ गई है। वर्ष 2002–07 की अवधि में अख़बारी कागज़ की माँग में वृद्धि 13 प्रतिशत, राइटिंग और प्रिटिंग, कंटेनर बोर्ड, कार्टन बोर्ड और अन्य की वृद्धि क्रमशः 5 प्रतिशत, 11 प्रतिशत, 9 प्रतिशत व 1 प्रतिशत अंकित की गई। अब पेपर उद्योग में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद में भी वृद्धि का कारक बन गई है।

पेपर उद्योग में अन्य सभी उद्योगों की तुलना में सबसे महत्वपूर्ण, परंतु कम ध्यान दिया जाने वाला और सबसे अधिक प्रभाव छोड़ने वाला क्षेत्र है। पेपर उत्पादन वैश्विक ऊष्णता में योगदान कर रहा है। प्रत्येक वृक्ष के कटने पर और उससे पेपर के कच्चे माल तैयार करने के तौर पर यह अनुमान है कि पेपर उद्योग में विश्व के कुल 42 प्रतिशत वन संसाधनों का उपयोग किया जाता है। यह प्रमाणित है कि उत्सर्जित कार्बन में से 30 प्रतिशत से अधिक कार्बन जंगलों में संचित हो जाती है जो जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण कारक है। पुराने बढ़े हुए एवं परिपक्व जंगल, द्वितीय बढ़े हुए प्राकृतिक वन, नए लगाए गए वनों के मुकाबले अधिक कार्बन सोखते हैं और उस कार्बन को पुनः प्राप्त करने में वर्षों का समय लगता है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि वन नए लगाए हैं या फिर औद्योगिक दृष्टि से लगाए गए हैं। जब वृक्षों को काटा जाता है तो उसका प्रभाव बराबर ही पड़ता है। पल्प एवं पेपर उद्योग ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के मामले में चौथे स्थान पर स्थापित है। कार्बन उत्सर्जन के मामले में यह 9 प्रतिशत का योगदान करते हैं। इस ग्रीन हाउस का सबसे बड़ा भाग तो केवल पल्प एवं पेपर उद्योगों के लिए आवश्यक ऊर्जा का उत्पादन करने से संबंद्ध है।

जलवायु में परिवर्तन के एक कारक के रूप में पेपर की समापन–क्रिया भी शामिल है अगर पेपर लैंडफील्ड है तो समापन क्रिया में मीथेन गैस का उत्सर्जन करते है जिसमें कार्बन की तुलना में 23 बार अधिक गर्मी सोखने की क्षमता है। यह अनुमान है कि नगर पालिका विभाग की कुल ठोस रद्दी में 1/3 भाग पेपर का होता है जो कि लैंडफिल का 34 प्रतिशत होता है एवं जो मानवजनित मीथेन गैस वायुमंडल को प्रदान करते हैं। पेपर के कम उपयोग से वायुमंडल को अधिक लाभ होता है। उदाहरण के लिए अगर अमेरिका अपने पेपर उपयोग में 10 प्रतिशत की कमी करे तो ग्रीन हाउस गैस वायुमंडल में 1.6 मिलियन टन कम प्रवेश करेगी। यह कुल 25,0000 कारों को सड़क से हटाने के समतुल्य होगी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पेपर उद्योग वायुमंडल को कितना अधिक हानि पहुँचा रहा है एवं वे उन वाहनों द्वारा जनित कुप्रभाव से भी अधिक है जो पेट्रोल एवं डीज़ल से चालित होते हैं।

पेपर की कम खपत एक महत्वपूर्ण उपाय है। पेपर उद्योग द्वारा पर्यावरण पर दुष्प्रभाव में कमी की दिशा में योगदान का अगला कदम यह होना चाहिए कि सभी पेपर प्राकृतिक रूप से खरे हो, इससे वृक्षों की कटान में कमी आएगी एवं प्राकृतिक वनों को बढ़त मिलेगी। उपयोग किए गए पेपर से पेपर उत्पादन करने में ऊर्जा की खपत कम व उत्पादन भी कम होगा।

इस प्रकार के उत्पादन एवं प्रयोग से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसे कागज़ प्रदूषण (पेपर पॉल्यूशन) के नाम से जाना जाता है। लुगदी की मिलें वायु, जल और भूमि को प्रदूषित करती है। अलग किया गया पेपर लैंडफिल साइट का बड़ा भाग है जो नगर पालिका के अचक्रित ठोस अपशिष्ट (सॉलिड वेस्ट) के कुल भार का 35 प्रतिशत है।

○○○

7

दुधारू गायों में पोषक तत्व का महत्व

दीपक एस. भदौरिया

कृषक भाइयों, विशेषकर पशुपालकों को इस बात की विस्तृत जानकारी रखनी चाहिए कि गायों का शरीर व भोजन किन–किन अवयवों से बना है तथा इन अवयवों की कितनी मात्रा भोज्य पदार्थों की रासायनिक रचना पर निर्भर करती है। इन पोषक तत्वों का गायों के शरीर में क्या कार्य हैं? इनकी कमी से क्या–क्या हानियाँ हो सकती हैं, यह सब संक्षिप्त रूप में लेखक ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

गाय के शरीर की रचना में मूल रूप से चार तत्व पाए जाते हैं– जल, प्रोटीन, वसा एवं खनिज; जिनकी मात्रा प्रतिशत में क्रमशः 56, 18, 21 एवं 5 है।

1. गाय के शरीर में जल की प्राप्ति के स्रोत

1.1 जल प्राप्ति के तीन स्रोत निम्नलिखित है–

(i) स्वेच्छा से पानी पीना

(क) जीवन निर्वाह के लिए लगभग 28 लीटर पानी प्रतिदिन का सेवन एक स्वस्थ गाय का प्रमुख लक्षण है।

(ख) दुग्ध उत्पादन के लिए गाय को प्रति एक लीटर दूध उत्पादन के लिए तीन से चार लीटर पानी देना लाभप्रद रहता है।

(ii) भोज्य पदार्थों के साथ

प्रत्येक भोज्य पदार्थ में कुछ–न–कुछ जल अवश्य होता है, उदहारणतः

क्र.	खाद्य पदार्थ	नमी की मात्रा (%)
1	हरे रसीले चारे	80–90
2	हरी घास	75
3	सारलेज	70
4	सूखी घास	15–18
5	पुआल या भूसा	10
6	खली, दाने व उपजात	10

ध्यान रखने योग्य तथ्य

पके पौधों में अधपके पौधों की अपेक्षा जल की मात्रा कम होती है। 15 प्रतिशत से अधिक जल वाले खाद्य पदार्थ अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रखे जा सकते हैं। इस बात का पशुपालकों को ध्यान रखना चाहिए।

(iii) जल की कुछ मात्रा गाय के शरीर के भीतर होने वाली विभिन्न उपापचयी (metabolic) क्रियाओं के द्वारा गाय को प्राप्त होती है, जिसको उपापचयक जल कहते है।

1.2 गाय के शरीर में जल का कार्य

(i) जल शरीर का आवश्यक भाग है। गाय बिना भोजन कई दिनों तक जिंदा रह सकती है परंतु शरीर में 15 से 20 प्रतिशत जल के अभाव में उसकी मृत्यु हो सकती है।

(ii) गाय के शरीर में कोशिकाओं के अंदर दृढ़ता तथा लचीलापन पैदा करना भी जल का कार्य है।

(iii) विलायक (solvent) के रूप में मुख्य रूप से जल के दो कार्य निम्नवत हैं :

(क) पोषक तत्व का पाचन–क्रियाओं में तथा उनके अवशोषण (absorption) में, तथा

(ख) शरीर द्वारा अवांछनीय (बेकार) पदार्थों के उत्सर्जन में।

(iv) गाय के शरीर में तापमान नियंत्रित रखने में भी जल महत्वपूर्ण कार्य करता है।

(v) भोजन को चबाने और निगलने में सहायक सिद्ध होता है जल।

2. प्रोटीन

2.1 गाय के शरीर में प्रोटीन प्राप्ति के स्रोत

भोज्य पदार्थों में अपरिष्कृत प्रोटीन (crude protein) में दो प्रकार के पदार्थों से गाय के शरीर को प्रोटीन मिलती है जोकि निम्नवत है–

(क) यथार्थ प्रोटीन (true protein)

(ख) प्रोटीन–रहित नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ (एन.पी.एन.) जैसे– एमीनो अम्ल, एमाइड, एमाइडन, अमोनिया, यूरिया, क्रिएटिन आदि।

पशुपालकों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि प्रोटीन–रहित नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों का उपयोग जुगाली करने वाले पशु ही कर पाते हैं। प्रोटीन अत्यधिक जटिल कार्बनिक रासायनिक पदार्थ है, जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तत्व पाए जाते हैं। ये प्रोटीन रासायनिक क्रियाओं द्वारा टूट कर एमीनो अम्ल बनाते हैं। प्रोटीन की संरचना में 24 एमीनो अम्ल पाए जाते हैं।

किसान भाइयों, विशेषकर पशुपालकों को यह तथ्य जानकर हर्ष होगा कि खाद्य पदार्थों में अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा को उनमें उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा द्वारा ज्ञात करते हैं। चूँकि प्रोटीन में लगभग 16 प्रतिशत नाइट्रोजन पाई जाती है, इसलिए 1 ग्राम नाइट्रोजन $= \frac{16}{100} = 6.25$ ग्राम। नाइट्रोजन में 6.25 गुणा करके कच्ची प्रोटीन की प्रतिशतता ज्ञात की जा सकती है।

खाद्य पदार्थ	कच्ची प्रोटीन (%)
भूसा व पुआल	1.0
कड़बी	6–7
सूखी घास	13–15
अनाज के उपजात	16–30
चना मटर	20–25
खली	30–45
पशु उपजात	40–80

2.2 गाय के शरीर में प्रोटीन के कार्य

1. प्रोटीन, गाय के शरीर का लगभग 17–20 प्रतिशत महत्वपूर्ण भाग है।
2. प्रोटीन, गाय के शरीर की मांसपेशियां तथा ऊतक बनाती है
3. प्रोटीन, गाय के शरीर में एंजाइमों तथा हारमोनो के उत्पादन में सहायक है।
4. प्रोटीन, पाचन–रसों के उत्पादन में भी सहायक है।
5. गाय के शरीर में दूध, बाल, त्वचा, खुर तथा सींग आदि के बनने में प्रोटीन अत्यधिक सहायक है।

3. वसा

3.1 गाय के शरीर में वसा–प्राप्ति के स्रोत

वसा पदार्थ अन्य अवयवों की अपेक्षा 2.25 गुणा शक्ति प्रदान करते हैं। प्रोटीन के समान वसा की मात्रा भी खाद्य पदार्थों में भिन्न–भिन्न पाई जाती है। सबसे अधिक तेलीय बीजों में, जैसे– मूंगफली, बिनौला, तिल में 17–35 प्रतिशत, तेलीय खली में 5–7 प्रतिशत, अनाजों में 10–12 प्रतिशत तथा भूसे, हरीघास व सूखी घास में 1–3 प्रतिशत वसा पदार्थ मिलते हैं।

3.2 गाय के शरीर में वसा के कार्य

1. वसा, गाय के शरीर में ऊर्जा प्रदान करती है।
2. वसा, गाय के शरीर को आवश्यक वसीय अम्ल, जैसे– लिनोलीड्, रेकीडोनिक, लिनोलिनिक प्रदान करती है।
3. गाय के दूध की वसा बनाने में प्रयोग होती है।
4. वसा घुलनशील विटामिनों, जैसे– ए, डी, इ को शरीर में पहुँचाने में सहायक है।
5. गाय के शरीर का लगभग 20 प्रतिशत भाग वसा ही है।

4. खनिज पदार्थ

4.1 खनिज पदार्थ या अकार्बनिक पदार्थ

शुष्क पदार्थ (dry matter) में कार्बनिक पदार्थों को जलाने के बाद जो अवशेष प्राप्त होता है उसे खनिज पदार्थ कहते हैं। गाय के शरीर में खनिज की मात्रा 3 से 5 प्रतिशत तक होती है। खाद्य पदार्थों में इनकी मात्रा 0.7 से 16 प्रतिशत तक होती है। शरीर में कैल्सियम व फॉस्फोरस हड्डियों में तथा पोटेशियम रक्त–कोशिकाओं व मांसपेशियों में, तथा सल्फर ऊन, बाल, सींग आदि में प्रोटीन के साथ पाई जाती है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म खनिज जैसे– लोहा, तांबा, मैंगनीज, जिंक, कोबाल्ट, मैंगनीशियम, आयोडीन आदि भी गाय के शरीर में पाए जाते हैं।

4.2 विभिन्न खाद्य पदार्थ जो गायों को दिए जाते हैं, उनमें खनिज की मात्रा निम्नलिखित है–

क्र.	खाद्य पदार्थ	खनिज की मात्रा (%)
1	हरे चारे	1.2 से 25
2	सूखे चारे (भूसा आदि)	4 से 5.5
3	अनाज	1.5 से 45
4	अनाज उपजात	4.5 से 4.5
5	खली	5 से 6.5

4.3 गाय के शरीर में खनिज पदार्थों के कार्य

1. खनिज पदार्थों से आवश्यक यौगिक (सॉल्ट्स) प्राप्त होते हैं।
2. खनिज पदार्थ, भोज्य पदार्थों को पचाने में तथा अवशोषण में सहायक हैं।
3. खनिज पदार्थ, पाचनक्रिया में अम्लीय अथवा क्षारीय माध्यम प्रदान कर एंजाइमों के कार्य में सहायक हैं।
4. गाय के दूध में खनिज मात्रा प्रदान करते हैं।
5. गाय के शरीर में रक्त की लाल कोशिकाओं में हीमोग्लोबिन बनाने में सहायक है।

गायों की दैनिक पोषक आवश्यकताएँ

शरीर भार (कि.ग्रा.)	शुष्क पदार्थ (कि.ग्रा.)	डी.सी.पी. (कि.ग्रा.)	टी.डी.एन. (कि.ग्रा.)	उपापचयी (एम.कै.)
निर्वाह हेतु आवश्यकताएँ				
200	3.5	0.150	1.7	6.0
250	4.0	0.170	2.0	7.2
300	4.5	0.200	2.4	8.4
350	5.0	0.230	2.7	9.4
400	5.5	0.250	3.0	10.8
450	6.0	0.280	3.4	12.4
500	6.5	0.300	3.7	13.2
550	7.0	0.350	4.0	14.4
600	7.5	0.350	4.2	15.5

उत्पादन हेतु आवश्यकताएँ (प्रति कि.ग्रा. दुग्ध उत्पादन पर)

वसा (प्रतिशत)	डी.सी.पी. (कि.ग्रा.)	टी.डी.एन. (कि.ग्रा.)	उपापचयी ऊर्जा (एम.कै.)
3	0.040	0.270	0.97
4	0.045	0.315	1.13
5	0.051	0.370	1.128
6	0.057	0.410	136
7	0.063	0.460	1.54
8	0.069	0.510	1.80

○○○

8

हरित भवन

डॉ. दिनेश मणि

वैश्विक तापन, जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं को देखते हुए वर्तमान में हरित भवन की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक हो गई है। भवन आश्रय प्रदान करने के साथ–साथ पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। पर्यावरण–अनुकूल भवन मूलतः उन भवनों को कहा जाता है जो पर्यावरण को कम प्रभावित करें, संसाधनों की खपत कम करें और प्रदूषण कम उत्पन्न करें। भवन–निर्माण की योजना बनाने के लिए निर्माण, उपयोग, नवीनीकरण और धराशायी करने तक किसी भी स्तर पर पर्यावरण–अनुकूल तरीकों को अपनाया जा सकता है, लेकिन सर्वश्रेष्ठ परिणाम के लिए निर्माण योजना के समय इन तरीकों को अपनाना आवश्यक है। भवन–निर्माण में ऊर्जा संरक्षण, जल, पर्यावरण–अनुकूल, भवन–निर्माण सामग्री, वर्षाजल संचयन, विषाक्त पदार्थों का न्यूनतम उपयोग, स्वस्थ आंतरिक पर्यावरण तथा सतत विकास का ध्यान रखते हुए कार्ययोजना बनाए जाने की आवश्यकता है।

भवनों में हरित तकनीकों का इस्तेमाल करने से न केवल ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम होगा, बल्कि बिजली और पानी पर लागत भी घटेगी इसके लिए डिजाइन के स्तर पर सटीक योजना बनाने और सही सामग्री व उपकरणों का इस्तेमाल करने की जरूरत होगी। आज दुनिया की 40 प्रतिशत से अधिक ऊर्जा का इस्तेमाल भवनों में होता है।

इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.) के एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक 38 प्रतिशत ऊर्जा का इस्तेमाल भवनों में होने लगेगा। इस प्रक्रिया में 3800 मेगाटन कार्बन उत्सर्जित होगा। वर्ल्ड वॉच इंस्टीच्यूट के अनुसार दुनिया के ताजे पानी का छठवां हिस्सा भवनों में इस्तेमाल होता है। कुल जितनी लकड़ी पैदा होती है उसका एक चौथाई हिस्सा और उसकी सामग्री व ऊर्जा का 40 प्रतिशत हिस्सा भी भवनों पर खर्च होता है। यदि भवनों का निर्माण ग्रीन डिजाइन के सिद्धांतों के आधार पर किया जाए तो 40 प्रतिशत या उससे भी अधिक ऊर्जा बचाई जा सकती है।

पर्यावरण और जलवायु में परिवर्तन से संबंधित चिंताओं के चलते विकसित देशों की कंपनियों के साथ भारतीय कंपनियों भी अपने व्यावसायिक परिसरों को हरित भवन (ग्रीन बिल्डिंग) का रूप देने लगी हैं। ऐसे भवनों का निर्माण प्रकृति के साथ संतुलन और बिजली की बचत की अवधारणा पर आधारित है।

एक अन्य अध्ययन के अनुसार हरित भवनों की रहवास क्षमता 6 से 26 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है और इस तरह श्वसन–संबंधी बीमारियों में 9 से 20 प्रतिशत तक की कमी संभव है।

आई.पी.सी.सी. की चतुर्थ आकलन रिपोर्ट के अनुसार भवनों में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा से उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में वर्ष 2020 तक 29 प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है और वह भी बगैर किसी अतिरिक्त लागत के। रिपोर्ट का आकलन है कि इस क्षेत्र को 70 प्रतिशत का अधिक ऊर्जा–कुशल बनाया जा सकता है। भारत में निर्माण उद्योग हर साल 13 प्रतिशत की दर से विकास कर रहा है। खर्च, कच्ची सामग्री के इस्तेमाल और इसके पर्यावरणीय प्रभावों के दृष्टिकोण से इस उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। हरित भवन से हमारा आशय परंपरागत भवनों के बदले में ऐसे भवनों के बनाने से है जिनमें कम से कम ऊर्जा,

पानी एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करके न्यूनतम अवशिष्ट का उत्पाद हो। हरित भवन में रहने वाले लोग परंपरागत भवनों में रहने वालों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होते हैं। हरित भवन लगभग 30 प्रतिशत ऊर्जा एवं 50 प्रतिशत पानी की बचत करता है। एक हरित भवन में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. प्रकाश, वायु इत्यादि प्राकृतिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग द्वारा कृत्रिम शीत तथा प्रकाश की कमी।
2. पेयजल का पुनः परिचालन।
3. पुनः चालित उड़न राख से बने ईंट, औद्योगिक एवं निर्माण–धूल इत्यादि का उपयोग।
4. वर्षा–जल का संरक्षण एवं पुनः उपयोग।
5. अपशिष्टों का सम्मिश्रण।
6. कृत्रिम प्रकाश तथा शांति के लिए नए तथा नवीनकरण ऊर्जा स्रोतों का उपयोग।
7. न्यून्तम कागज़ों का उपयोग, दीवाल रंगने हेतु रंगायुक्त रंगों का उपयोग आदि।

इस समय देश में लगभग 40 भवन ऐसे हैं जो हरित श्रेणी में आते हैं। करीब 10 से 12 कंपनियां ऐसी हैं जो हरित भवनों की सलाहकार हैं। हरित भवनों के निर्माण में प्राकृतिक प्रकाश का ज्यादा–से–ज्यादा उपयोग होता है और वहां काम करने वाले लोग स्वयं को प्रकृति से जुड़ा समझते हैं। इस प्रकार 20 से 30 प्रतिशत ऊर्जा की बचत होती है। इसके साथ ही कर्मचारी की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। वास्तव में एक हरित भवन अपने संपूर्ण जीवन की अवधि के दौरान पर्यावरण पर अच्छा खासा प्रभाव डालता है। भवन के निर्माण और उसके रखरखाव में जमीन, वन, जल और ऊर्जा की खपत होती है। जल प्रबंधन, प्राकृतिक ऊर्जा, स्थानीय कच्चा माल आदि के प्रयोग के द्वारा हरित भवन का निर्माण वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

प्रायः यह देखा गया है कि निर्माण उद्योग तथा निर्माण कार्यों में भवनों तथा इसके निर्माण से जुड़ी सामग्री पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। भवन में रहने वालों के साथ–साथ उनके संलग्न परिवेश तथा समग्र विश्व के वायुमंडल पर भी प्रभाव पड़ता है। निर्माणाधीन परियोजनाएं प्रत्यक्ष रूप से अपशिष्ट उत्पन्न करती हैं तथा ध्वनि प्रदूषण वायुमंडल में धूल पर्यावरण के साथ–साथ जल को भी प्रदूषित कर देती है। निर्माण उद्योग से जुड़े पेशेवर लोग ऐसे प्रतिकूल प्रभाव के बारे में पूरे जानकार होते हुए भी अपने व्यावसायिक उद्देश्य से समझौता नहीं कर पाते हैं। उनमें से बहुत कम ही, निर्माण से जुड़े पर्यावरण के विषम प्रभाव पर ध्यान देते हैं। उनका ध्येय तो बस लागत, समय एवं गुणवत्ता पर होता है। पर्यावरण की उनको कोई परवाह नहीं होती।

यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम लागत तथा गुणवत्ता के साथ–साथ पर्यावरण सुरक्षा पर भी उचित ध्यान दें जिससे यह धरती हमारे लिए सदा रहने लायक रहे। कोई भी परियोजना मुख्यतः अभिकल्पन, निर्माण, परिचालन पर आधारित होती है। निर्माण के दौरान अभिकल्पकार, मालिक, प्रस्तुतकर्ता आदि सभी के समन्वय एवं सहयोग से हरित भवन बनाया जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत अच्छा पर्यावरण, मौलिक अधिकार एवं अनुच्छेद 51ए के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण मौलिक कर्तव्य है। विकास कार्य से पर्यावरण पर होने वाले प्रभाव के आकलन की पद्धति को पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन कहा जाता है। निर्माण पद्धति का चयन सार्थक लागत एवं स्वस्थ पर्यावरण को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

यूनाइटेड स्टेट्स ग्रीन बिल्डिंग काउसिंल ने "लीडरशिप इन एनर्जी एंड एनवायरनमेंटल डिजाइन" (LEED) पद्धति हरित भवनों की श्रेणी–निर्धारण हेतु लागू की है। मानदंडों का अनुपालन करते हुए यह दीर्घस्थायी जीवन भवन–निर्माण हेतु एक स्वैच्छिक संस्थान है। मानदंडों का उद्देश्य हरित भवन से परिवेश पर दीर्घस्थायी प्रभावों का आकलन करना है।

एल.ई.ई.डी. द्वारा श्रेणी–निर्धारण मूलतः वातानुकूलित भवनों में ऊर्जा बचत पर आधारित है। भारत में श्रणी–निर्धारण पद्धति "गृह" (Griha) देश समस्त प्रकार के मौसम को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

प्रारंभ में श्रेणी–निर्धारण की यह प्रक्रिया द एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (TERI) द्वारा 'टेरी गृह" नाम से संकल्पित तथा विकसित की गई थी। इस प्रक्रिया में

अनेक वास्तुकार एवं विशेषज्ञों की सलाह ली गई। इसमें एन.बी.सी–2005 (NBC-2005) प्रावधानों तथा बी.ई.ई. (BEE) द्वारा जारी "एनर्जी बिल्डिंग कंजर्वेशन कोड 2007" अन्य आई.एस. कोड एवं स्थानीय उपनियमों/कानूनों को सम्मिलित किया गया है।

हैदराबाद स्थित भारतीय ग्रीन बिल्डिंग काउसिंल, भारतीय उद्योग परिसंघ से लाइसेंस प्राप्त एक संस्थान है जो उपर्युक्त भारतीय तथा अमेरिकी मानदंडों के प्रावधानों के तहत "हरित भवन" को सत्यापित करता है। "एल.ई.ई.डी." तथा "गृह" इन दोनों प्रमाणकों को निर्माण–शिल्प की निरंतरता हेतु विकसित किया है। हरित भवन तैयार करने के लिए आरंभ से ही इसका अभिकल्पन निर्माण, रख–रखाव तथा उपयोग से पर्यावरण से होने वाले प्रभाव को ध्यान में रखकर किया जाता है। हरित भवन की विशेषता है– 1. विकसित ऊर्जा दक्षता, 2. स्थान का सही उपयोग, 3. कच्चे माल के प्रति संवेदनशीलता, 4. जलसंरक्षण, 5. भवनों के अंदर अच्छी हवा, 6. अधिक टिकाऊ तथा आरामदेह, 7. प्रदूषण में कमी तथा प्राकृतिक संपदा में बचत और स्वास्थ्यप्रदता।

किसी हरित भवन के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण घटक इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री होती है, लेकिन उसी की सर्वाधिक उपेक्षा की जाती है। हमारे भवन के मानकों में केवल संचालन ऊर्जा को कम करने पर ध्यान दिया जाता है और अन्य महत्वपूर्ण कारकों, जैसे– पानी, अपशिष्ट पदार्थों, घर के अंदर के वायु–प्रदूषण, कच्ची निर्माण सामग्री, नवीकरणीय ऊर्जा का इस्तेमाल इत्यादि को यों ही छोड़ दिया जाता है।

हरित भवनों के संबंध में सबसे बड़ी हिचक इस बात को लेकर है कि इनके निर्माण में सामान्य भवनों की तुलना में 6 प्रतिशत पूँजी अधिक लगती है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल पूँजीगत लागत ही अधिक होती है। अन्य लगातार होने वाले खर्च इसमें घटते जाते हैं और इस तरह बढ़ी हुई पूँजीलागत की भरपाई एक या दो साल में हो सकती है। बेंगलुरु स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस ने विभिन्न निर्माण–सामग्रियों का इस्तेमाल करने वाले भवनों का तुलनात्मक आकलन किया। इसमें पाया गया कि एक बेहद मजबूत कंक्रीट–निर्मित बहुमंजिला इमारत में ऊर्जा की खपत 4.21 गीगाजूल प्रति वर्गमीटर रही, जो 30 प्रतिशत कम है। कई वास्तुविद् और भवन–निर्माण सामग्रियों जैसे– मिट्टी, चिकनी मिट्टी, सूखी घास, पत्थर, लकड़ी और बांस को लेकर अभिनव प्रयोग कर रहे हैं। उनका दावा है कि इसमें प्लास्टर की कोई जरूरत नहीं होती है और इस तरह निर्माण की लगात भी कम हो जाती है।

एक हरित भवन की सबसे अहम जरूरत यह है कि उसमें अधिकतम ऊर्जा कार्य निष्पादन होना चाहिए, ताकि वहां के रहवासियों को वांछित तापमान और उचित प्रकाश मिल सके। अधिकतम ऊर्जा कार्य–निष्पादन किसी भवन की डिजाइन में ऐसी सौर ऊर्जा तकनीकों व भवन निर्माण सामग्री का इस्तेमाल करने से प्राप्त होगा जिनसे परंपरागत प्रणालियों पर न्यूनतम भार आए।

ठंडे मौसम वाले क्षेत्र में स्थित किसी भवन के लिए ऐसे उपाय अपनाने जरूरी है कि सूर्य से मिलने वाली गर्मी का अधिकतम दोहन किया जा सके। इंसुलेशन का निर्माण और चमकरहित दोपहर की रोशनी ऐसी ही कुछ विशेषताएं है। भवन का एक हिस्सा जमीन के भीतर रहने से भी अंदरूनी तापमान को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। हवा व सूर्य की रोशनी के आगमन व अवरोध में किसी भी भवन के लैंडस्केप की अहम भूमिका होती है। टेरेस गार्डन घर को अंदर से शीतल रखता है।

देश में द्रुतगति से निरंतर हो रहे नित नए–नए निर्माण कार्यों की वजह से पर्यावरण को अब तक बहुत क्षति पहुंची है। इस दृष्टिकोण से इन गतिविधियों पर पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में नियंत्रण जरूरी था। पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा ऐसी परियोजनाओं के लिए पर्यावरण स्वीकृति प्राप्त करने की शर्त एक प्रशंसनीय कदम है। ऊर्जा, जल, प्राकृतिक संपदा को पुनः उपयोग में लाकर कम से कम अपशिष्ट उत्पन्न करते हुए पर्यावरण को सुरक्षित एवं प्रदूषणमुक्त रखने में हरित भवन की अवधारणा निश्चित रूप से सराहनीय है।

○○○

9

जलमुद्रण क्षेत्र में अभियांत्रिक कार्यकलाप

डॉ. नवीन कुमार

विकास कार्यों में भूमि एवं जल–संरक्षण हेतु विभिन्न प्रकार की यांत्रिक विधियां प्रयुक्त होती है–

1. कृषि–योग्य भूमि पर उपाचार – संरक्षण उपाय, उत्पादन पद्धतियां।
2. जल–निकास नालियों का उपचार।

आवश्यक अभियांत्रिक उपाय

कृषि–योग्य भूमि पर उपचार :–

(अ) **परिरेखी (कंटूर) खेती** – इसमें स्थलाकृतिक सर्वेक्षण के आधार पर निर्धारित परिरेखा (कंटूर लाईन) लगाकर पानी को छोटे–छोटे अवरोधों से रोका जाता है। इस विधि से पानी की गति कम रहने से भूमि का कटाव नहीं होता, भूमि की नमी का संरक्षण भी होता है। इस प्रकार की विधि में मशीन/उपकरणों का रख–रखाव भी नहीं करना पड़ता तथा यह विधि 2 से 7 प्रतिशत ढ़लान से अधिक उपयोगी है।

(ब) **परिरेखी बंधनिर्माण (बंडिंग)** – इसमें ढाल के विपरीत दिशा में मिट्टी के डोलों का परिरेखा पर निर्माण कर उस पर खस, मूंजा, धामण आदि का रोपण करते हैं। इस विधि में लंबे समय तक जल एवं मृदा का संरक्षण होता है। इस विधि में बंध की ऊँचाई एवं आकार, विभाग की डिजाइन संदर्शिका के आधार पर ज्ञात करते हैं। यह कार्य बंध पर वानस्पतिक आवरण–क्षेत्र के किसानों की पसंद, वातावरण के प्रकार व भूमि के आधार पर करते हैं।

कृषितर भूमि पर उपचार :–

(1) **खंडीन** – यह सामान्यतः रेगिस्तानी क्षेत्रों में बहुतायत से प्रयुक्त होती है। इसमें कम ढाल वाले खेतों पर वर्षा जल संगृहीत किया जाता है, जिससे भूमिगत जलस्तर में बढ़ोतरी होती है। खंडीन के लिए स्थान का चुनाव, उसकी डिजाइन एवं आयोजना भी विभाग की संदर्शिका (मैन्यूअल) एवं क्षेत्र की स्थिति के आधार पर किया जाता है।

(2) **कृषि ताल (फार्म पांड)** – इसमें खेत में उपयुक्त स्थान पर कृषि ताल का निर्माण करते हैं जिससे भूमिगत जलस्तर में वृद्धि होती है तथा उपलब्ध पानी सिंचाई, पेयजल आदि के रूप में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के निर्माण में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों एवं सामुदायिक/जन्मभूमि को उचित आधार पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(3) **खाई एवं डोल की बाड़** – इसमें मिट्टी की खुदाई कर उससे निकलने वाली मिट्टी से डोल बनाते है। इस प्रकार खाई एवं डोल का निर्माण कर उस पर वृक्षों/झाड़ियों के बीजों के रोपण अथवा खस–मूंज का रोपण किया जाता है जिससे ये खाई एवं डोल अधिक समय तक सुरक्षित एवं स्थिर रहें।

(4) **वी. नालियों (वी. डिच) का निर्माण** – इनका निर्माण सामान्यतः 10 प्रतिशत ढ़लान वाले क्षेत्रों में किया जाता है तथा इस कार्य में बहने वाले पानी की मात्रा, विभाग की संदर्शिका वी डिच की अनुप्रस्थ काट आदि का निर्धारण क्षेत्र–विशेष के आधार पर किया जाता है।

ढाल की तीव्रता – 1. सामान्य ढाल (0 से 5 प्रतिशत), 2. मध्यम ढाल (5 से 15 प्रतिशत), 3. तीव्र ढाल (15 प्रतिशत से अधिक)।

(5) **सांतरित खाई (स्टैगर्ड ट्रेंच)** – अधिक ढाल वाले पहाडी क्षेत्रों में वर्षा–जल की हानि को रोकने एवं भूमि के कटाव से बचने के लिए पंक्ति में खड्डे के बध पर वनस्पति का रोपण करने से बंध अधिक समय तक स्थिर रहते है। इन खड्डो के द्वारा पानी के बहाव की गति कम होती है तथा प्राकृतिक रूप में नमी का संरक्षण होता है।

(6) **अपवर्तक नालियां** – जल–ग्रहण क्षेत्रों में कभी–कभी ऊँचाई पर स्थित क्षेत्रों की अपेक्षा निचले क्षेत्रों में अधिक कार्य करना पड़ता है। असाधारण वर्षा के कारण निचले क्षेत्रों में बहुत पानी बहकर आ जाता है जो हानि पहुंचा सकता है। अतः ऐसे क्षेत्रों हेतु, अपवर्तक नालियों का निर्माण किया जाता है। इन नालियों का मुख्य उद्देश्य ऊपरी क्षेत्र से आने वाले अपवाह जल को प्राप्त कर उसे सुरक्षित रूप से दिशा–परिवर्तन कर बाहर निकालना होता है।

(7) **रोक बांध (चैक डैम)** – क्षेत्र के नाले के ऊपरी भाग पर छोटे गलीनुमा क्षेत्रों में भूमि का कटाव रोकने एवं पानी के बहाव को कम करने के लिए इनका निर्माण होता है। इसमें नालों के बीच जगह–जगह रुकावट डालकर पानी को रोका जाता है। पानी का वेग कम होने से बहती मिट्टी भी वहां रुककर जमा हो जाती है।

स्थानीय उपलब्ध सामग्री तथा स्थल की आवश्यकता के अनुसार रोक–बांध निम्न प्रकार से बनाया जा सकता है–

(अ) **झाड़–जंगल वाला रोक बांध** – लकड़ी के डंडे की दो लाइनें गाडकर उनके बीच में स्थानीय झाड़ियों, पेड़ों की शाखाओं एवं लकड़ियों को जमाकर झाड़–जंगल रोक बांध बनाते हैं। इनकी बगलों में एवं तल में भूसा एवं मिट्टी भर देते हैं।

(ब) **पत्थर रोक बांध** – मोटी दरार नाले में सूखे पत्थरों की रोक लगाकर पानी की रुकावट तैयार की जाती है। जहां तक हो सके बड़े आकार के पत्थर काम में लाए जाने चाहिए।

(स) **वानस्पतिक रोक बांध** – मिट्टी का रोक बांध बनाकर क्षेत्र में उपलब्ध वानस्पतिक झाड़ियां तथा खस, मूंज, ग्वारपाठा, रामबांस आदि की तीन चार लाइनों में नाले के बहाव के विपरीत दिशा में रोपण कर दिया जाता है। इनके निर्माण में कम जगह में पानी की तीव्रता रोकी जा सकती है।

(द) **गैबिआन रोक बांध** – ये बांध मध्यम ढलान वाली नालियों में अर्ध चंद्राकार आकृति में बनाए जाते हैं। जहां पानी का वेग अधिक होता है वहां गैबिआन रोक बांध का निर्माण किया जाता है। इसमें सूखे पत्थरों की चिनाई से निर्मित रोक बांध को तार की जाली से बांध दिया जाता है। यह रोक बांध अधिक क्रियाशील होता है।

(य) **मिट्टी के रोक बांध** – सीमेंट के खाली थैलों में मिट्टी भर थैलों को बांध दिया जाता है तथा थैलों को नाले में एक के ऊपर एक जमाकर रुकावट बना दी जाती है। ये रोक बांध कम लागत के व अधिक क्रियाशील होते हैं, परंतु इनकी स्थिरता साधारण होती है।

जल निकास नालियों का उपचार :–

नाले के अंतिम भाग का उपचार – जल–ग्रहण क्षेत्र में नाले के अंतिम बिंदु पर क्षेत्र बड़ा और गहरा हो जाता है। अतः उसी के अनुसार भूमि व जल–सरंक्षण के लिए बड़ी पक्की संरचनाओं के निर्माण की आवश्यकता होती है। उपलब्ध राशि अनुसार, राजस्थान में जल संग्रहण के लिए किया जाने वाला प्रमुख निर्माण कार्य एनीकट है। इसका निर्माण नाले पर पानी को रोकने के लिए किया जाता है। एनीकट निर्माण से क्षेत्र के कुओं के जलस्तर में बढोतरी होती है, पशुओं को पीने का पानी तथा आसपास के खेतों को सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध होता है। इसके स्थान का चयन इस प्रकार किया जाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक पानी एकत्रित किया जा सके। गहरी तथा संकरी घाटियां इस दृष्टि से उपयुक्त रहती है।

जल ग्रहण विकास दल के सदस्य की भूमिका –

1. सदस्य को अपने जल–ग्रहण क्षेत्र का पूरा ज्ञान होना चाहिए। भौतिक निरीक्षण कर क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का पूरा ज्ञान होने पर ही वह आवश्यक निर्माण की आवश्यकता का आकलन कर सकता है।
2. सदस्य को क्षेत्र की पारिस्थितिकी का पूर्ण ज्ञान होने पर ही पानी की उपलब्धता, वर्षा की मात्रा, पानी का वेग, बहाव की दिशा आदि निर्माण कार्य प्रस्तावित किए जाने चाहिए।
3. सही स्थल का चुनाव भी सदस्य की भूमिका पर ही निर्भर करता है।
4. क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री के अनुरूप सस्ती एवं सुलभ तकनीक का चयन सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए।

○○○

10

क्रोकर : पक्षियों की तरह आवाजें निकालने वाली मछली

डॉ. परशुराम शुक्तल

क्रोकर मुख्य रूप से नई–दुनिया की 'पर्च' जैसी मछली है। इसकी दो सौ से अधिक जातियां हैं। इनमें से अधिकांश समुद्री हैं, किंतु कुछ जातियां ताजे पानी की बड़ी–बड़ी झीलों में भी पाई जाती हैं। क्रोकर की अधिकांश जातियां उत्तरी अमरीका में हैं। क्रोकर की सभी जातियों में अटलांटिक क्रोकर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह मैसाचुसेट्स से लेकर अर्जेनटीना तक के भागों में पाई जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका में ताजे पानी की क्रोकर को ढोलक मछली (ड्रम फिश) भी कहते हैं। यह दक्षिणी राज्यों में बहुतायत से पाई जाती है। यहाँ 28 किलोग्राम वजन तक की क्रोकर मछलियां देखने को मिली हैं। अमरीकी पुरातत्वविदों ने क्रोकर के ऐसे कंकाल खोजे हैं, जिनसे यह सिद्ध हो गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका में कभी 90 किलोग्राम तक की क्रोकर पाई जाती थी। वर्तमान समय में 2–3 किलोग्राम से अधिक वचन की क्रोकर मछलियां देखने को नहीं मिलतीं। क्रोकर की तीन जातियां यूरोप में भी पाई जाती हैं। ये हैं– मीगर, ब्राउन मीगर और कोर्ब। इनमें मीगर सबसे बड़ी होती है। इसकी लंबाई 1.8 मीटर तक होती है एवं खेल के लिए इसका शिकार किया जाता है।

क्रोकर मछली पक्षियों की तरह सुरीली और विचित्र प्रकार की आवाजें निकालने के लिए विख्यात है। मछलियों के संबंध में यह कहा जाता है कि ये गूँगी–बहरी होती है, अर्थात् न सुन सकती हैं और न बोल सकती हैं। किंतु क्रोकर इसका उपवाद है। क्रोकर अपनी मांसपेशियों को गति देकर विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालती हैं। तथा इसका स्विम ब्लैडर प्रतिध्वनि उत्पन्न करने वाले अंग के रूप में कार्य करता है। कुछ क्रोकर मछलियां में मांसपेशियों शरीर की दीवारों से जुड़ी होती हैं और कुछ में सीधी स्विम ब्लैडर से जुड़ी होती हैं, किंतु सभी में इन मांसपेशियों का एक ही उपयोग होता है। यह मांसपेशियों को फैलाकर और सिकोड़कर आवाजें निकालती है। सामान्यतः एक सैकंड में एक मांसपेशी को 24 बार फैलाया और सिकोड़ा जाता है, अर्थात् मांसपेशी को गिटार के तार के समान गति दी जाती है। इससे ध्वनि उत्पन्न होती है। इससे प्रभावित होकर स्विम ब्लैडर प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है, जिससे विभिन्न प्रकार की टर्र–टर्र, फुफकारने, फिनफिनानें, घुरघुराने, कड़कड़ करने, चरमराने, खर्राटे लेने, चूँ–चूँ करने, ढोलक बजने तथा पक्षियों की मीठी तान आदि की आवाजें सुनाई देती है। कुछ क्रोकर मछलियों में ये आवाजें बहुत तेज होती हैं और कुछ में बहुत धीमी होती हैं, किंतु धीमी से धीमी आवाजें भी इतनी तेज होती हैं कि 18 मीटर की गहराई पर क्रोकर द्वारा निकाली गई आवाजें पानी की सतह पर आराम से सुनी जा सकती हैं। मलाया के मछुआरे क्रोकर की आवाज से इसकी उपस्थिति मालूम कर लेते हैं और इसका शिकार करते हैं।

क्रोकर मछली केवल विभिन्न प्रकार की आवाजें ही नहीं निकालती, बल्कि आवाजों के उत्तर भी देती है। वे क्रोकर मछलियां जिनके स्विम ब्लैडर भीतरी कान का हड्डियों से सीधा संबंध नहीं होता, वे 13 से लेकर 3000 साइकल प्रति सैकंड तक की फ्रीक्वेंसी पर उत्तर देती हैं तथा जिनका स्विम ब्लैडर भीतरी कान की हड्डियों से सीधा संबंध होता है, वे 16 से लेकर 10,000 साइकल प्रति सैकंड तक की फ्रीक्वेंसी पर उत्तर देती हैं। क्रोकर मछलियों द्वारा निकाली गई विभिन्न प्रकार

की आवाजों की फ्रीक्वेंसी भी सीमा के मध्य होती है।

क्रोकर झुंड में रहने वाली मछली है। इसके दस–दस लाख तक के झुंड देखे गए हैं। इनमें कभी–कभी पूरा–पूरा झुंड आवाजें निकालता है। झुंड में रहने के कारण इसके लिए विभिन्न प्रकार की आवाजों का विशेष उपयोग एवं महत्व है। यह मुख्य रूप से झुंड के सदस्यों को एक साथ रखने के लिए, प्रतिध्वनि द्वारा पानी की गहराई मालूम करने के लिए तथा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालती हैं। इन आवाजों का उपयोग निश्चित रूप से अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी किया जाता होगा, किंतु जीव–वैज्ञानिकों को अभी इसकी जानकारी नहीं है। कुछ क्रोकर मछलियों में स्विम ब्लैडर नहीं होता, अतः ये विभिन्न प्रकार की ध्वनियों वाली आवाजें नहीं निकाल पाती। इस प्रकार की क्रोकर मछलियां झुंड में सबके साथ बने रहने के लिए अपने दाँत किटकिटा कर अनेक प्रकार की आवाजें निकालती हैं।

विभिन्न जातियों की क्रोकर मछलियों के आकार में तो पर्याप्त अंतर होता है, किंतु सभी की शारीरिक संरचना लगभग समान होती है। क्रोकर का रंग सामान्यतया हल्का पीलापन लिए हुए रूपहले से लेकर हल्के कत्थई तक होता है। फ्लोरिडा से लेकर ऐन्टिलीज तक के क्षेत्रों के आसपास पट्टेदार ढोलक (स्ट्रिप्ड ड्रम) नामक एक क्रोकर मछली पाई जाती है, जिसके शरीर पर बड़े–बड़े काले–सफेद पट्टे होते हैं। इसकी पीठ का मीनपंख बहुत बड़ा होता है और दूर से देखने पर काले झंडे के समान मालूम पड़ता है।

क्रोकर का शरीर लंबा और थूथन गोलाई लिए हुए होता है। कुछ जातियों की क्रोकर मछलियों के ठोढ़ी के नीचे छोटी–छोटी दाढ़ी–मूँछे होती हैं। क्रोकर के एक पीठ का बड़ा मीनपंख होता है, तथा इसके आगे का भाग कांटों वाला होता है। अधिकांश जातियों की क्रोकर मछलियों का वजन कुछ किलोग्राम से अधिक नहीं होता, किंतु कैलिफोर्निया की खाड़ी में "टोट्यूबा" नामक एक क्रोकर पाई जाती है, जिसका वजन 120 किलोग्राम तक होता है। यह विश्व की सबसे बड़ी और भारी क्रोकर है।

अटलांटिक क्रोकर के दो पीठ के मीनपंख होते हैं, किंतु दोनों एक दूसरे को छूते हुए से होते हैं, अतः दूर से देखने पर एक ही मालूम पड़ते हैं। इसकी पीठ के मीनपंख का पीछे का भाग कोमल होता है। क्रोकर के शरीर पर शल्क होते हैं, किंतु ये बड़ी सरलता से शरीर से अलग हो जाते हैं। इसके यकृत में बहुत अधिक मात्रा में विटामिन "ए" पाया जाता है। इसीलिए यकृत के लिए इसका भारी संख्या में शिकार किया जाता है।

दक्षिणी आस्ट्रेलिया से लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक के भूमध्य सागर में क्रोकर परिवार की एक अद्भुत मछली पाई जाती है, जिसे "वीक फिश" कहते हैं। यह मछली इंगलैंड के सागर तटों पर भी काफी संख्या में देखी जा सकती है। वीक फिश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह साइरन जैसी आवाज इस प्रकार निकालती है कि नौसेना अधिकारी भी धोखा खा जाते हैं।

क्रोकर के स्विम ब्लैडर की रचना अन्य मछलियों से पूरी तरह भिन्न होती है। इसके स्विम ब्लैडर में वृक्ष की डालियों के समान अनेक शाखाएँ होती हैं। इन्हीं से यह विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालती है। क्रोकर मछली के स्विम ब्लैडर में पिन से छेद कर दिया जाए या इसे खराब कर दिया जाए तो यह किसी प्रकार की कोई ध्वनि नहीं निकाल सकती।

क्रोकर मांसाहारी मछली है। इसका प्रमुख भोजन विभिन्न प्रकार के समुद्री जीव तथा छोटी–छोटी मछलियां हैं। यह हमेशा झुंड में रहती है और झुंड में ही भोजन करती है, किंतु यह बाराक्यूडा के समान समुद्री जीवों की हत्या नहीं करतीं। क्रोकर मछलियां हमेशा ही किसी–न–किसी तरह की आवाजें निकालती रहती हैं, किंतु भोजन करते समय ये बहुत अधिक आवाजें निकालती हैं। इस समय इनकी आवाजें बहुत तेज और तीखी होती है।

सभी जातियों की क्रोकर मछलियों में समागम और प्रजनन बिल्कुल सामान्य होता है। ये समागम काल में भी विशेष प्रकार की ध्वनियाँ निकालती हैं। इनका समागम काल जैसे–जैसे निकट आता है, इनकी ध्वनियाँ तेज होती जाती हैं और प्रजनन काल में अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती हैं। प्रजनन काल समाप्त होते ही ये

ध्वनियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। विभिन्न जातियों की क्रोकर मछलियों में ध्वनियों के समय और अवधि में पर्याप्त अंतर होता है। कुछ क्रोकर मछलियाँ शाम को ध्वनियाँ निकालना आरंभ करती हैं। इनकी ध्वनियाँ मध्यरात्रि में बड़ी तेज हो जाती हैं और प्रातः काल होने से पूर्व ही समाप्त हो जाती हैं। कुछ क्रोकर मछलियाँ समागम काल में मिलकर सुरीली आवाज में गाती हैं। इनमें से कुछ केवल सुबह ही गाती हैं, कुछ केवल शाम को गाती हैं तथा कुछ सुबह शाम दोनों समय पर गाती हैं। इसी तरह कुछ जातियों की क्रोकर मछलियों में केवल मादाएँ ध्वनि निकालती हैं, कुछ में केवल नर ध्वनि निकालते हैं तथा कुछ में नर और मादा दोनों मिलकर ध्वनियाँ निकालते हैं ।

क्रोकर मछली के अंडे बहुत छोटे होते हैं तथा इसके प्रत्येक अंडे में तेल का एक अंश होता है, जिससे यह पानी की सतह पर आ जाता है और तैरता रहता है। इसके अंडे प्लवक के साथ मिलकर बहुत बड़ी संख्या में समुद्री जीवों का आहार बन जाते हैं तथा अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं। क्रोकर का लारवा जन्म लेते ही भोजन करने लगता है और जब यह कुछ बड़ा हो जाता है तो अपने आकार की अन्य क्रोकर मछलियों के साथ रहने लगता है।

अधिकांश जातियों की क्रोकर मछलियाँ सालमन की तरह बड़ी स्वादिष्ट होती है, अतः इनका उपयोग भोजन के लिए किया जाता है। जिन स्थानों पर ये बहुत बड़ी संख्या में मिलती हैं, वहाँ इन्हें व्यावसायिक स्तर पर पकड़ा जाता है और विदेशों में भेजा जाता है। कुछ स्थानों पर क्रोकर का शिकार एक मनोरंजक खेल समझा जाता है तथा मात्र मनोरंजन के लिए इसका शिकार किया जाता है। अटलांटिक क्रोकर के यकृत (लीवर) में विटामिन ए की बहुत अधिक मात्रा होती है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार की दवाएं बनाने में किया जाता है। नई दुनिया में इयरस्टोन नामक एक क्रोकर मछली पाई जाती है। इससे "कोलिक" नामक बीमारी की दवा तैयार की जाती है।

एक समय था, जब समुद्र को "शांत सागर" कहते थे, क्योंकि लोगों का विश्वास था कि सागर के जीव–जंतु गूँगे–बहरे होते हैं, किंतु अब यह धारणा समाप्त हो गई है। अब यह सिद्ध हो गया कि क्रोकर तथा इसी प्रकार के बहुत–से समुद्री जीव – ह्वेल, डॉलफिन, पोपस आदि न केवल विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं, बल्कि इन्हें सुनते–समझते तथा एक–दूसरे से बातें देखा–सुना जा सकता है। आधुनिक जीव वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि झींगा–झींगी जैसे छोटे जलचर भी विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं। सामान्यतया समुद्री जीव झुंड में बने रहने, पानी की गहराई मालूम करने, शिकार की स्थिति जानने तथा समागम काल में एक–दूसरे को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं। इनकी बहुत–सी आवाजें इस प्रकार की होती है, जो लोगों को भ्रमित कर देती हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के समय अनेक पनडुब्बियों ने शत्रु की पनडुब्बी समझकर किसी चीज का पीछा किया, किंतु अंत में पता चला कि यह शत्रुपनडुब्बी न होकर एक ह्वेल थी, जिसकी हृदय की धड़कनें पनडुब्बी के संवेदनशील यंत्र पकड़ रहे थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नौसेना के जहाजों तथा पनडुब्बियों के शत्रु का पता लगाने वाले यंत्र और अधिक विकसित हुए। ये यंत्र प्रायः क्रोकर तथा इसी प्रकार के अन्य जीवों द्वारा निकाली जाने वाली आवाजें पकड़ लेते थे और इन्हें भ्रम से शत्रु की आवाजें समझ लिया जाता था। इन्हीं कारणों से इस काल में सागर में पाए जाने वाले जीव जंतुओं की आवाजों का अध्ययन आरंभ किया गया, जिसके बड़े रोमांचक परिणाम सामने आए। आज भी अनेक देशों के नौसेना अधिकारी भूमध्य सागर में बहुतायत से पाई जाने वाली "वीक फिश" की साइरन जैसी आवाज़ को शत्रु की पनडुब्बी समझकर पीछा करते हैं और वास्तविकता मालूम होने पर अपना सर पीटते हुए लौट आते हैं।

○○○

11

वैदिक एवं आयुर्वेदिक काल में रसायनविज्ञान

डॉ. दुर्गादत ओझा

वस्तुतः भारत में रसायनविज्ञान का इतिहास बहुत प्राचीन है। इतिहास के काल–विभाजन तथा प्राचीन भारत में रसायनविज्ञान के विकास पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि भारतीयों को हड़प्पा–पूर्व काल (ईसा पूर्व 4000) से ही रसायनविज्ञान तथा रसायन प्रौद्योगिकी का ज्ञान था।

वैदिक काल में रसायनविज्ञान के अनेक गूढ़तथ्यों का प्रतिपादन हुआ, जिनकी झलक हमें वेद की ऋचाओं में मिलती है। वेदों में जल की उत्पत्ति, जल के महत्व, विविध धातुएं, मिश्राधातुएं, लाक्षा रसायन आदि अनेकानेक महत्वपूर्ण विषयों पर जानकारी उल्लेखित हैं।

आयुर्वेद काल (ई. पू. 1500 – 800 ए. डी.) में औषधि निर्माण के क्रम में अनेकानेक रसायनों का वर्णन मिलता है। आयुर्वेद काल में जिन रसायनज्ञों की कृतियाँ प्राप्त होती हैं, वे हैं– कौटिल्य, चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट्ट। इस कालखंड की दो प्रमुख संहिताएं हैं–

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र में रसायनविज्ञान

कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना ई.पू. चौथी शताब्दी में हुई, जिसमें मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के प्रधानमंत्री कौटिल्य (चाणक्य) ने आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक, सिविल तथा सैन्य संगठन के संबंध में अत्यंत विद्वत्तापूर्ण वर्णन किया है। इस पुस्तक में स्वर्ण, रजत, ताम्र, सीस (लेड), टिन तथा लोह अयस्कों का विस्तृत वर्णन है। इन अयस्कों के गुणधर्म, उनसे धातु का निष्कर्षण तथा धातु–संकरों के निर्माण का वर्णन है। चाणक्य ने विभिन्न प्रकार के मद्यों, यथा– मोदक, प्रसन्न, आसव, अरिष्ठ, मैरेय तथा मधु आदि के निर्माण का वर्णन भी किया है।

2. चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में रसायनविज्ञान

दोनों संहिताएं आयुर्वेद के महान ग्रंथ हैं, जिनमें औषधियों के निर्माण एवं उपयोग का विस्तृत वर्णन है। चरक संहिता में औषधि की दृष्टि से 341 वनस्पतिजन्य, 177 प्राणिजन्य तथा 64 खनिज रसायनों का उल्लेख है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में 385 वनस्पतिजन्य, 57 प्राणिजन्य तथा 64 खनिज रसायनों के औषधीय प्रयोग एवं निर्माण विधियों का वर्णन है।

सुश्रुत ने द्राक्षा (अंगूर), खजूर, जौ, बहेड़ा, गुड़, शक्कर, जामुन आदि से मद्य बनाने की विधि बताई है। साथ ही धातु–भस्मों के निर्माण एवं उपयोग का भी वर्णन हे। चरक ने 14 प्रकार की सुराओं का उल्लेख किया है। इनमें प्रमुख हैं– सुरा, मंदिरा, अरिष्ट, शारकः, गौड़, माद्धिक तथा मधु।

चरक ने छह धातुओं – सोना, चांदी, तांबा, सीस (लेड), टिन तथा लोहा एवं उनके यौगिकों का औषधि के रूप में वर्णन किया है। सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थानम् खंड के द्रवद्रव्यविधि अध्याय के धातुवर्ग में स्वर्ण, रजत, ताम्र, कास्य, लोह, त्रपु एवं सीस के साथ–साथ मुक्ता, विद्रुमा, बज्र, वैदूर्य और स्फटिक के गुणों का वर्णन किया है।

स्वर्ण वस्तुतः मधुर, हृदय (Cardiotonic), बृंहण (Nourishing), रसायन (Restorative) है और त्रिदोषहर, शीत, नेत्रों के लिए हितकर तथा विषनाशक है। रजत (Silver) अम्ल, रेचन, शीत, स्निग्ध और पित्त तथा वायु को नष्ट करती है। ताम्र (Copper) कषाय, मधुर, शीतल और रेचक है। कांस्य (Bell metal) तिक्त, चक्षुष्य और वात तथा पित्त–हर है। लोह (Iron) वातवर्धक, शीतल

है तथा तृष्णा, पित्त एवं कफ को दूर करता है। त्रपु (Tin) और सीस (Lead) कटु, कृमिहर, लवरणस और लेखन है। मुक्ता (Pearl), विद्रुम (Coral), वज्र (Diamond), वैदूर्य (Ruby) और स्फटिक (Quartz) नेत्रों के लिए हितकर, शीतल, रेचक्र, विषहर, पवित्र, धारण करने योग्य हैं तथा पाप, अलक्ष्मीत्व आदि दोषों को दूर करते हैं।

सुक्षुत संहिता के सूत्रस्थानम् खंड के लवण वर्ग में लवणों एवं क्षारों का गुण–संहिता में विस्तार से वर्णन है।

सैंधव लवण नेत्रों के लिए हितकर, रुचिकर, लघु, अग्निवर्धक, स्निग्ध, मधुर, वृष्य, शीत और उत्तम रोषध्न है। समुद्र लवण मधुरपाकी, कम उष्ण, विदाह न करने वाला, भेदन, कुछ स्निग्ध, शूलहर है और अधिक पित्तवर्धक नहीं है। विंड लवण क्षारयुक्त, दीपन, सूक्ष्म, शुल और हृद्रोगनाश, रोचन, तीक्ष्ण, उष्ण और वातानुलोमन है। सीवर्चल लवण पाक में लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, शूल, गुल्म और विबंध को दूर करने वाला, हृदय सुगंधित और भोजन में रुचि उत्पन्न करने वाला है। इसी प्रकार अन्य लवणों का वर्णन भी किया गया है।

यवक्षार (जवाखार), स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार), ऊषक्षार, पाकिम और टंकणक्षार आदि क्षार गुल्म, अर्श, ग्रहणीदोष तथा शर्करा एवं अश्मरी नाशक हैं। सभी क्षार पाचन, रक्तपित्तकर और सर (दस्तावर) होते हैं। यवक्षार मुख्य रूप से पोटैशियम कार्बोनेट, सज्जीखार (सोडियम कार्बोनेट), पाकिमक्षार (पोटैशियम नाइट्रेट) तथा टंकणक्षार (बोरेक्स) हैं।

3. वाग्भट कृत अष्टांगहृदय में रसायनविज्ञान

अष्टांगहृदय, अष्टांग आयुर्वेद का एक आधिकारिक ग्रंथ है, जो छह भागों में विभक्त है– सूत्रस्थान, शरीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान एवं उत्तरस्थान। उत्तरस्थान में रसायन–तंत्र के प्रतिपादक चार अध्याय हैं, जिनमें अनेकानेक औषधियों के निर्माण एवं उपयोग का रसायन–प्रौद्योगिकीय वर्णन है। यहां हम उदहारणस्वरूप चार लोकप्रिय रसायनों का उल्लेख कर रहे हैं, यथा– च्यवनप्राश, त्रिफला रसायन, नारसिंह घृत एवं भृंगराजप्रवाल रसायन।

4. तांत्रिका काल (700–1300 ए.डी.) एवं औषधि रसायनकाल (1300–1600 ए.डी.)

तांत्रिका काल के संक्रमण काल (800–1100 ए.डी.) की दो प्रमुख रचनाएं उपलब्ध हैं– सिद्धयोग (वृंद) तथा चक्रदत्त (चक्रपाणिदत्त)। इन दोनों ग्रंथों में धातुओं से निर्मित औषधियों का वर्णन है। वृंद के सिद्धयोग में 'रसामृत चूर्णम्' नामक रसायन के बनाने की विधि इस प्रकार बताई गई है–

कर्षद्वयं गंधकस्य तदर्धं पारदस्य च।
विड़ालापदमात्रंतु लिह्यातन्मधुसर्पिषा।।

एक भाग सल्फर तथा इसका आधा भाग मरकरी लेकर दोनों को परस्पर घोटते हैं। इस क्रिया में प्रमुख रूप से मरकरी सल्फाइड बनता है। इसका सेवन मधु तथा मक्खन के साथ करते हैं।

इसी प्रकार 'परपटी ताम्रम' नामक रसायन के बनाने की विधि का वर्णन निम्न प्रकार हैं–

रसगंधकताम्राणां चूर्णं कृत्वा समाक्षिकम्।
पुटपाकविधौ पक्ता मधुनालोड़य संलिहेत्।।

सल्फर, कॉपर तथा पाइराइट मरकरी को साथ लेकर बंद मूषा (क्रूसिबल) में भर्जन (रोस्ट) करते हैं। इस क्रिया में कॉपर तथा मरकरी के सल्फाइड प्राप्त होते हैं। इस रसायन का सेवन मधु के साथ करते हैं। 'परपटी ताम्रम' गोली या पाउडर के रूप में एक आयुर्वेदिक चिकित्सा, एनीमिया के उपचार में किया जाता है, त्वचा आदि रोगों के आयुर्वेदिक पंचकर्म उपचार में भी इस्तेमाल किया जाता है।

तांत्रिक काल में वृंद तथा चक्रपाणिदत्त के अलावा अनेक अन्य रसायनज्ञों तथा उनकी रचनाओं का परिचय मिलता है। उनमें से प्रमुख हैं–

नागार्जुन– रसरत्नाकर, कक्षपुट तंत्र, आरोग्यमंजरी, योगसार, योगाष्टक; **वाग्भट (सिंहदेव के पुत्र)**– रसरत्नसमुच्चय; **भगदव्गोविंदपाद**– रसहृदय, काकचंडेश्वरीमत; **गोविंदाचार्य**– रसार्णव; **सोमदेव**– रसेंद्रचूड़ामणि; **यशोधर**– रसप्रकाशसुधाकर; **नित्यनाथ**– रसरत्नाकर; **रामचंद्र**– रसेन्द्रचिन्तामणि; **मदनांतदेवसूरि**– रसचिन्तामणि, रसकल्प; **विष्णुदेव**– रसराजलक्ष्मी; **मथनसिंह**– रसनक्षत्रमालिका; **गोपालकृष्ण कविराज**– रसेन्द्रसारसंग्रह।

अन्य प्रमख रचनाएं हैं– *धातुरत्नमाला, रसप्रदीप, धातुक्रिया/धातुमंजरी, सुवर्णतंत्र*।

इस काल के रसायनज्ञों ने विभिन्न प्रकार के रसों का विभाजन और नामकरण निम्न प्रकार से किया है। रस कुल 10 प्रकार के हैं– महारस (Main chemicals), उपरस (Subsidiary chemicals), सामान्य रस (Common chemicals), रत्न (Gems), धातु (Metals), विष (Poisons), क्षार (Alkalis), अम्ल (Acids), लवण (Salts), धातु भस्म (Metallic powders compounds)। महारस कुल 8 प्रकार के हैं– *माक्षिंक विमलं शैलं चपलं रसकस्तथा। सस्यकों दरदश्चेव स्रोतोऽञ्जनमथाष्टकम्।।* माक्षिक (Iron, pyrites, FeS_2 iron sulphide), विमल (Cubic Sulphide of Iron Fe_2S_2), शिलाजतु (Asphalt, Bitumen), सस्यक (Copper Sulphate, Blue Vitriol), स्रोतोऽञ्जन (Collyrium), उपरस कुल 8 प्रकार के हैं– गंधक उपकरण (Sulphur Allotropes), गैरिक (Hematite [Fe_2SO_4] + Laterite + Clay), काशिस (Iron Sulphate $FeSO_4$), तुवरि (Alum), तालक (Orpiment As_2S_2), मनःशिला (Realgar As_2S_2), अंजन (Collyrium), कंकुष्ठ (Excreta of baby elephant)। सामान्य रस कुल 9 प्रकार के हैं– कांपिल्ला (Mallotus philipensis), गौरी पाषाण (Arsenic oxide), नवसार (Ammonium chloride NC_4Cl), वराटक (Marine Shell, Cowri), अग्निजार (Ambergris from fish), लाजवर्त (Lapis Lazuli, Aquamarine blue), गिरी सिंदूर (Vermillion HgS from rocks), हिंगुल (Cinnabar HgS, Mercuric sulphide), मुर्दा शृंगकम् (Litharge PbO, Lead monoxide)।

अम्ल (Acids)

प्राचीन भारत में कार्बनिक अम्लों का निर्माण अनेक फलों, पुष्पों, पत्तियों तथा अन्य पदार्थों से किया जाता था। उदाहरण के लिए नींबू जाति के फलों से साइट्रिक अम्ल, टारटैरिक अम्ल, ऑक्सैलिक अम्ल तथा टैनिक अम्ल, स्टाइरेक्स बेन्जोइन (उदस्य पुष्प) से बेन्जोइक अम्ल, स्टोरेक्स (शिलारस) से सिनैमिक अम्ल, किण्वित अन्न से ऐसीटिक अम्ल, दही से लैक्टिक अम्ल तथा अश्वमूत्र से हिप्पुरिक अम्ल। खनिज अम्लों का ज्ञान क्रमशः बाद में हुआ। संस्कृत तथा तमिल ग्रंथों में सल्फ्यूरिक अम्ल (दाहजल), हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल का वर्णन है। रुद्रायमल में वर्णन है – *ताम्रदाहजलैर्योगे जायते तुत्थकम् शुभम्*। अर्थात् $Cu + 2H_2SO_4 - CuSO_4 + 2H_2O + SO_2$

कसीस, सैंधव, माक्षिक, सौवीर, व्योष (तीन मसाले– सोंठ, कालीमिर्च और मिरचा), गंधक, सौवर्चल (शोरा), मालती रस, इन सबको शिग्रु रस से सिक्त करके जो 'विड' बनता है, वह धातुओं को जला सकता है। इस योग में कसीस को गर्म करके सल्फ्यूरिक अम्ल बनता होगा, जो शोरे से अभिक्रिया करके नाइट्रिक अम्ल और सैंधव पर प्रतिक्रिया करके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल देता होगा। इन दोनों का मिश्रण अम्लराज कहलाता है, जिसमें स्वर्ण और प्लैटिनम आदि धातुएं भी घुल जाती हैं।

क्षार (Alkalis)

इन रसायनों से ऊतकों का क्षरण हो जाता है, इसलिए इन्हें क्षार नाम दिया गया है– *तत्र क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षार*। रसार्णव में तीन प्रकार के क्षारों का वर्णन है– *त्रिक्षाराः टंकणक्षारो यवक्षारश्चसर्जिका* (रसार्णव 5/351), 1. टंकण क्षार (सुहागा), 2. यवक्षार, 3. सर्जिका क्षार।

तिल, अपामार्ग, कदली, पलाश, शिग्रु, मोचक, मूलाद्रक, चिंचा (इमली), अश्वत्थ (पीपल), इन वृक्षों की लकड़ी की राख में वृक्ष क्षार होते हैं।

लवण

रसरत्नसमुच्चय में छह प्रकार के लवणों का वर्णन है–

लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं बिडम्।
सौवर्चलं रोमकं च चुल्लिकालवणं तथा।।

1. सामुद्र (Sea salt, NaCl + MgCl), 2. सैन्धव, 3. बिड़ (लवणों का मिश्रण जिनको गर्म करने से अम्लराज बनता है), 4. सौवर्चल, 5. रोमक लवण (सांभर), 6. चुल्लिका लवण (चूल्हे में लकड़ी का जलने से प्राप्त)।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निम्न तीन लवणों के औद्योगिक मात्रा में उत्पादन का उल्लेख है–

1. मकरध्वज (Cinnabar, HgS), 2. सौराष्ट्रजा (Alum), 3. सौवर्चल (Salt peter)। जे. बैंक्स नाम के अंग्रेज अधिकारी ने रॉयल सोसायटी (लंदन) के अध्यक्ष को 1790 में भारत में मकरध्वज के निर्माण की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि इंगलैंड में इस लवण के उत्पादन के प्रयास में वे सफल नहीं रहे। बैंक्स ने यह भी लिखा कि भारत के लोग अच्छे HgCl तथा Hg_2Cl_2 का उत्पादन भी करते हैं।

रसायन प्रयोगशाला

रसरत्नसमुच्चय में रसायन प्रयोगशाला के निर्माण हेतु निम्नलिखित वर्णन हैं–

रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जितम्।
सर्वोषधिमये देशे रम्ये कूपसमन्विते।।

रसायन प्रयोगशाला का निर्माण ऐसे रम्य स्थान पर करें जहाँ औषधीय पौधों का बाहुल्य हो तथा समीप में जलाश्य हो।

प्रयोगशाला में पूर्व भाग में पारद रखें, दक्षिण–पूर्व में वह्निकर्म, दक्षिण में पाषाणकर्म, दक्षिण–पश्चिम में शस्त्रकर्म, पश्चिम में प्रच्छालन, उत्तर–पश्चिम में सुखाने हेतु तथा उत्तर में वेधकर्म उपकरण रखें।

धातु उत्पादन हेतु सामग्री इकट्ठा करके उत्तर–पूर्व दिशा में रखना चाहिए।

नागार्जुनकृत रसरत्नाकर में अनेक अन्य यंत्रों का भी वर्णन है, जिनकी सूची निम्नवत् है–

शिला यंत्र, अधःपातान यंत्र, चाकी यंत्र, घोणा यंत्र, पाषाण यंत्र, भुवःपातान यंत्र, बालुका यंत्र, गुणाभ्रक यंत्र, भूधर यंत्र, पातन यंत्र, अग्निसोम यंत्र, नारायण यंत्र, वंश यंत्र, नियामक यंत्र, गंधकत्राहिक यंत्र, जालिका यंत्र, नलिका यंत्र, गमन यंत्र, मूषा यंत्र, चारण यंत्र, गजदंत यंत्र, तुला यंत्र, हंडिका यंत्र, ढोल यंत्र, कच्छप यंत्र, कमभाजन यंत्र।

इनमें से अनेक यंत्रों का आधुनिक रसायन प्रयोगशाला में भी प्रयोग किया जाता है।

वैद्युग रासायनिक सेल (Electrochemical Cell)

ऋषि अगस्त्य द्वारा 14वीं शताब्दी में रचित ग्रंथ अगस्त्य संहिता' भी इस काल का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में वैद्युतरासायनिक सेल का वर्णन है। यह वर्णन डेन्यल सेल से पूरी तरह मेल खाता है, जिसे इतालवी वैज्ञानिकों ने 500 वर्ष बाद उद्घाटित किया है। ध्यातव्य है कि ऐसे अनेक भारतीय ऋषियों के वैज्ञानिक आविष्कारों को सैकड़ों–हजारों वर्ष बाद यूरोपीयन वैज्ञानिकों ने अपना बताकर प्रकाशित किया है।

प्राचीन भारत में धातुकर्म

धातुकर्म (Metallurgy) रसायनविज्ञान का एक प्रमुख अंग है। भारत में धातुकर्म का इतिहास भी अत्यंत प्राचीन है।

1. विपरीत आसवनी विधि (Reverse Distillation Process) से शुद्ध जिंक प्राप्त करना – भारतीयों द्वारा विपरीत आसवन विधि से शुद्ध जिंक प्राप्त करना धातुविज्ञान के क्षेत्र में एक आश्चर्य है। जस्ते के अयस्क से शुद्ध जस्ता प्राप्त करने के लिए उसे 1200 डिग्री सेंटीग्रेड के ताप तक गरम करना आवश्यक है, किंतु जस्ता 913 डिग्री सेंटीग्रेड पर ही उबलने लगता है। अतः पहले जस्ते के अयस्क का भर्जन कर ऑक्साइड बना लेते थे, फिर भर्जित जस्ते को कोयला और नमक मिलाकर मिट्टी के मटकों में तपाते थे तथा 1200 डिग्री सेंटीग्रेड पर विपरीत आसवनी विधि से जस्ता प्राप्त करते थे। यह विद्या भारत में ईसा से अनेक शताब्दियों पूर्व से प्रचलित थी। ध्यातव्य है कि यूरोप के लोग सन् 1735 तक यह मानते थे कि जस्ता का एक तत्व के रूप में अलग से प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। यूरोप में सर्वप्रथम विलियम चैम्पियन ने जस्ता प्राप्त करने की विधि ब्रिस्टल विधि के नाम से पेटेंट करवाई। ब्रिस्टल विधि 13वीं सदी के ग्रंथ 'रसरत्नसमुच्चय' में जस्ता बनाने की जो विधि दी गई है, उसी की नकल है।

2. दिल्ली का लोह स्तंभ (370–375 ईसवी) – इतिहास में भारतीय इस्पात की श्रेष्ठता के अनेक उल्लेख मिलते हैं। अरब और फारस के लोग भारतीय इस्पात की तलवार के लिए लालायित रहते थे। तीन अंग्रेज अधिकारियों (डॉ. बेंजामिन हायन, 1795; मेजर जेम्स फ्रैंकलिन; कैप्टन जे. कैम्पबेल, 1842) ने भारतीय इस्पात उद्योग की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। भारत में श्रेष्ठ इस्पात का निर्माण छोटी–छोटी भट्टियों से ग्रामोद्योग एवं गृह–उद्योग के रूप में पूरे देश में होता था। अंग्रेजों ने 1874 में बंगाल आयरन कंपनी की स्थापना कर इस गृह–उद्योग को उजाड़ दिया। आज भी झारखंड के कुछ बनवासी परिवारों के पास इस्पात बनाने की भट्टियाँ हैं।

नई दिल्ली में कुतुबमीनार के पास स्थित लोह स्तंभ आज भी विश्व के धातुविदों के लिए आश्चर्य का विषय है। 16 शताब्दियों से खुले में रहने के बाद भी उसमें जंग लगने का निशान तक नहीं है। इसमें फॉस्फोरस की अधिक मात्रा व सल्फर तथा मैंगनीज की कम मात्रा है। स्लैगं की अधिक मात्रा अकेले तथा सामूहिक रूप से जंग प्रतिरोध क्षमता बढ़ा देती है। इसके अतिरिक्त 50 से 600 माइक्रोन मोटी (एक माइक्रोन = 1 मिमी. का एक हजारवाँ हिस्सा) ऑक्साइड की परत भी स्तंभ को जंग से बचाती है।

3. बुद्ध की ताम्र प्रतिमा (5वीं शताब्दी ए.डी.) – भारत में ताम्र निर्माण का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। बिहार प्रांत के भागलपुर जिले के सुल्तानगंज में स्थित बुद्ध की ताम्र प्रतिमा भारत में ताम्र के धातुकर्म का एक उत्कृष्ट नमूना है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 80 फुट ऊँची बुद्ध की एक और ताम्र प्रतिमा का वर्णन किया है, जो 7वीं शताब्दी ए.डी. में सम्राट अशोक के वंशज राजा पूर्णवर्मन द्वारा बनवाई गई थी। यह प्रतिमा अब अप्राप्त है।

भारत में आधुनिक रसायन के प्रणेता आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे हैं, जिनकी हम 150वीं जयंती मना रहे हैं। आधुनिक काल में जिन भारतीय वैज्ञानिकों तथा भारतीय मूल के वैज्ञानिकों ने देश का मान बढ़ाया है, उनका स्मरण भी समीचीन है। डॉ. चंद्रशेखर वेंकटरमन ने 'रामन प्रभाव' की खोज कर 1930 में भौतिकी में नोबेल पुरस्कार अर्जित किया है। 'रामन प्रभाव' पर आधारित रामन स्पेक्ट्रमिकी रसायनविज्ञान में संरचना निर्धारण की एक सशक्त तकनीक हैं उन्हीं के वंशज डॉ. सुब्रमण्यम चंद्रशेखर को 'चंद्रशेखर लिमिट' के लिए 1983 का भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय के रसायन के छात्र रहे डॉ. हरगोविंद खुराना को 'राइबोन्यूक्लीइक अम्ल (आर.एन.ए.)' पर उनके शोध के लिए वर्ष 1968 का चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार मिला। डॉ. वेंकटरामन रामाकृष्णन ने जिन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय से रसायन में उच्च शिक्षा पाई, 'राइबोसोम' पर शोध के लिए वर्ष 2009 का रसायन का नोबेल पुरस्कार अर्जित किया है।

इन सभी वैज्ञानिकों का मूल मंत्र भारतीय मनीषा का निम्नलिखित श्लोक रहा है–

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

अर्थात् हे परमात्मन्! मुझे राज्य की कामना नहीं है, स्वर्ग की कामना नहीं है और मुक्ति की कामना भी नहीं है। कामना है तो मात्र यह कि दुःखों से त्रस्त प्राणियों के दुःख को दूर कर सकूं। अतः इस प्रकार की भावना विश्व के मात्र भारतीय वेद–अनुयायी व्यक्तियों की है। अतः वेद में निहित रसायन को पाश्चात्य वैज्ञानिक भी मान रहे हैं। आशा है, आधुनिक भारत के तरूण वैज्ञानिक अपने पूर्वज रसायनज्ञों से प्रेरणा प्राप्त करेंगे तथा भारत की गौरवशाली वैज्ञानिक परंपरा को और समृद्ध बनाएंगे।

○○○

12

शुष्क जलवायु में फलोद्यान संस्थापन की उन्नत प्रौद्योगिकी

डॉ. राजुलाल भारद्वाज

राजस्थान देश का सर्वाधिक सूखा प्रांत होने के साथ–साथ क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है, जिसका क्षेत्रफल, देश के क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत है। राज्य की आबादी, देश की आबादी की 5.4 प्रतिशत एवं पशुधन 18.7 प्रतिशत है, परंतु सतही जल उपलब्धता मात्र 1.16 प्रतिशत है एवं भू जल उपलब्धता भी 1.7 प्रतिशत है। वर्षा का राष्ट्रीय औसत जहां 1200 मि.मी प्रतिवर्ष है वहीं राज्य का औसत मात्र 531 मि.मी है। वर्षा अनिश्चित एवं अल्प है। पिछले 50 वर्षों में 43 बार राज्य में कहीं–न–कहीं अकाल हुआ है। यहाँ का अधिकांश क्षेत्र शुष्क एवं अर्ध शुष्क है। इन क्षेत्रों की मुख्य समस्या कम वर्षा एवं सिंचाई के लिए पानी की सीमित उपलब्धता है। अतः इन क्षेत्रों में धान्य फसलों का उत्पादन संभव नहीं है। जल प्रबंधन के द्वारा इन क्षेत्रों में कुछ सूखा सहन करने वाले फल वृक्षों का उत्पादन किया जा सकता है। इस क्षेत्र में सफल फल उत्पादन के लिए सीमित सिंचाई, जल का पूर्ण उपयोग आवश्यक है। इसके साथ–साथ सूखा सहन करने वाले फल एवं उनकी किस्मों का चुनाव, गहरी एवं सीधी बढ़ने वाली जड़ों वाले पौधों के प्रवर्धन की तकनीक, जल संकीर्णन क्रियाओं के उपयोग, भूमि तथा पौधों से जल हानि रोकने की तकनीक का प्रयोग आवश्यक है।

जल संरक्षण की विधियां :–

(1) वर्षा जल संरक्षण – वर्षा के जल को रोककर उसका भंडारण करना तथा पानी की कमी होने पर इसका उपयोग फलवृक्षों में सिंचाई हेतु करना चाहिए। वर्तमान में हम वर्षा के पानी का सिर्फ एक प्रतिशत ही उपयोग कर पा रहे हैं। जल–संग्रहण क्षेत्रों में वर्षा जल के संरक्षण हेतु तालाब, नाडी, तलाई, कुंड आदि बनाकर पानी को व्यर्थ बहने से रोककर संरक्षित करना चाहिए। एकत्रित वर्षा के पानी का जमीन में कम–से–कम रिसाव हो इस हेतु जल–सरंक्षण क्षेत्रों में तालाब की काली चिकनी मिट्टी की 5 सेमी. मोटी परत को प्लास्टिक लाइनिंग पेंदे में समान रूप से बिछाना लाभदायक है, जिससे भूमि के जल स्तर में सुधार होता है। संरक्षित पानी का उपयोग बूंददार सिंचाई पद्धति से उद्यानों में सिंचाई करने हेतु किया जाना चाहिए।

(2) घड़ा सिचाई पद्धति – शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में पौधों को प्रारंभिक अवस्था में लगाना बहुत कठिन होता है, क्योंकि प्रारंभिक अवस्था में पौधे का जड तंत्र पूर्ण विकसित नहीं होता जिससे पौधा पानी की कमी से मर जाता है। अतः प्रारंभिक अवस्था में पेड़ के जड़ क्षेत्र में पानी का भरा घड़ा रखना चाहिए, तथा घड़े में छोटे–छोटे छिद्र कर देना चाहिए, जिससे धीरे–धीरे पानी रिसकर पौधे को लगातार प्राप्त होता रहे व जल–हानि भी न्यूनतम हो। सात दिन में घड़ा पुनः भरना पड़ता है। इससे पौधे की बढ़वार अच्छी रहे तथा जड़ तंत्र शीघ्रता से निष्कासित हो जाता है।

(3) बूंद–बूद सिंचाई पद्धति – शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक तापमान के कारण सिंचाई जल की अधिकांश मात्रा जलवाष्प के रूप में उड़ जाती

है। अतः बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति में पौधे की आवश्यकता के अनुसार बूंद–बूद करके जड़–क्षेत्र में पानी दिया जाना चाहिए, जिससे पानी का अधिकांश भाग जड़ों द्वारा ग्रहण कर लिया जाए। यह विधि अपनाने से 70 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है तथा नियमित पानी की उपलब्धता के कारण पौधों की बढ़वार भी अच्छी होती है।

(4) जल संकीर्णन तकनीक – पौधों के चारों ओर की भूमि इस प्रकार ढालू करें कि वर्षा जल उसके नीचे इकट्ठा होता रहना चाहिए। पॉलिथीन अथवा उपलब्ध खरपतवार व फसलों के अवशेषों को पौधों के थालों पर फैलाकर (मल्चिंग) नमी को संरक्षित रखना चाहिए। पहाड़ी तथा ढालू भूमि में पौधों के ऊपर की भूमि के किनारे पर खाई एवं निचले किनारे पर मेड़ बनाई जाए तो नए लगाए पौधे सफलतापूर्वक जम जाएंगे। इसके अतिरिक्त पौधे लगाने से, विशेषकर बलुई भूमि में, जल शीघ्रता से नीचे नहीं रिसेगा एवं जड़ क्षेत्र नम बना रहेगा जिससे जड़ों का विकास शीघ्रता से होता है।

(5) समतलीकरण एवं मेड़बंदी – वर्षा के पानी का मृदा में अधिक संचय हो इसके लिए खेतों के चारों ओर अच्छी मेड़बंदी एवं समतल होना आवश्यक है। अधिक बड़े खेतों को सुविधानुसार मेड़ें बनाकर छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर लेना चाहिए ताकि वर्षा के पानी को रोककर उसका यथावत् संरक्षण किया जा सकें।

(6) जैविक खादों का प्रयोग – भूमि में लगातार अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से मृदा की जल धारण करने की क्षमता में कमी आती है। सिंचाई एवं वर्षा–जल की अधिकांश मात्रा खेत से फालतू बह जाती है। अतः भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने व अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि भूमि में अधिक मात्रा में जैविक खादों का प्रयोग किया जाए। जैविक खाद भूमि की उर्वरता के साथ–साथ अधिक नमी संग्रहण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। कार्बनिक खादों में गोबर की खाद, कंपोस्ट खाद, हरी खाद, नीम खली तथा वर्मी कंपोस्ट के प्रयोग से मृदा जल–संग्रहण की क्षमता में बहुत वृद्धि होती है तथा लंबे समय तक नमी बनी रहने से कम पानी की स्थिति में फलवृक्ष अच्छी तरह पनपते रहते हैं।

(7) प्रति–वाष्पोत्सर्जक का उपयोग – कुछ रसायन जैसे एक्रोपाइल, पोलाकॉट, केओलिनाइट तथा प्रोलिन का 4–6 प्रतिशत घोल व 1.5 प्रतिशत आयल पेड़ों पर ठीक समय पर छिड़कने से उनसे जल–हानि काफी कम होती है, क्योंकि ये रसायन पौधे के पर्णरंध्रों को बंद कर देते हैं तथा पत्तियों के ऊपर पतली परत बनाकर सूर्य की किरणों को परावर्तित कर देते हैं।

सूखा–सह फलवृक्षों का चयन :–

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में ऐसे फलवृक्षों का चुनाव करना चाहिए जिनको कम पानी की आवश्यकता हो एवं सूखा सहने की क्षमता हो।

(1) शुष्क क्षेत्रों में ऐसे फलवृक्षों का चयन करना चाहिए जिनकी अधिकांश वृद्धि उस समय हो जब वातावरण में उच्चतम नमी होती है। फूल का आना व फलों का पकना, सूखा प्रारंभ होने से पूर्व ही हो जाए, जैसे– बेर, अन्नास, फालसा, लसोडा, आदि।

(2) जिन फलवृक्षों में 2–3 बहार (पुष्पन) आती है, उनमें वर्षा के जल का अधिकांश उपयोग होता है। अतः ऐसी 'बहार' (मृग बहार) मृदा में अधिकतम नमी होती है, जैसे– अमरूद, अनार, नींबू की मृग बहार फसल अच्छी रहती है।

(3) बारानी क्षेत्रों में ऐसे फलवृक्षों का चयन करें, जिनका जड़तंत्र गहरा हो व तने पर मोटी छाल, धंसे हुए पर्णरंध्र, छोटी पत्तियां, पत्तियों पर मोमदार परत हो तथा सूखे के समय पत्ते गिराकर सुषुप्तवस्था में चले जाए, जैसे– फिंग, फालसा, बेर, अनार, लसोडा, कैर आदि।

(4) शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में अधिकांश मृदा लवणीय प्रकृति की होती है। अतः इन क्षेत्रों में एसे फलवृक्ष उगाएं जो लवणता को सहन कर सकें, जैसे–

शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फलवृक्ष एवं उनकी महत्वपूर्ण किस्में :–

क्र.सं.	फलवृक्ष का नाम	फूल आने का समय	फल पकने का समय	उन्नत किस्में
1.	बेर	सितबंर–अक्टूबर	फरवरी–अप्रैल	गोला, सेब, मूंडिया
2.	लसोड़ा	फरवरी–मार्च	अप्रैल–मई	बड़े फल वाले पौधे
3.	अनार	जून–जुलाई	अक्टूबर–दिसंबर	जालोर, सीडलेस, सिंदूरी
4.	सीताफल	जून–जुलाई	नवंबर–दिसंबर	बाला नगर, अर्का श्यान
5.	अमरूद	जून–जुलाई	अक्टूबर–दिसंबर	कोहिर सफेद, एल–49, ललित
6.	आंवला	फरवरी–मार्च	दिसंबर–जनवरी	एनए–7, आनंद–2, एनए–5 बनारसी, चैकया
7.	नीबू	जून–जुलाई	फरवरी–मार्च	विक्रम, प्रमलिन
8.	फालसा	दिसंबर–जनवरी	मार्च–अप्रैल	शरबती लोकल
9.	बेल (बील)	मई–जून	अप्रैल–मई	एनए–5, मिर्जापुरी, ए–9
10.	जामुन	फरवरी–मार्च	जुलाई–अगस्त	पारस
11.	करौंदा	फरवरी–मार्च	जून–जुलाई	सफेद – गुलाबी हरे बैंगनी फल वाले
12.	खजूर	फरवरी–मार्च	जून–जुलाई	हलावी, खदरावी, मैदजूल
13.	फिंग (अंजरी)	फरवरी–मार्च	मई–जून	ब्लैक इलाइची, बैंगलोर
14.	कैर	फरवरी–मार्च मार्च–अप्रैल	मार्च–अप्रैल मई–जून	
15.	इमली	मई–जून	मार्च–अप्रैल	योगेश्वरी, पी.के.एम.–1

खजूर, बेर, लेसोडा, कैर आदि।

उपरोक्त सभी फलवृक्षों में फलों का पकना लगभग शुष्क मौसम प्रारंभ होने से पूर्व ही हो जाता है तथा जिन फलवृक्षों पर सूखे के समय फल लगे रहते हैं, वे सुषुप्तावस्था में होने के कारण उन पर सूखे का कोई विपरीत प्रभाव नहीं होता। जुलाई माह में वर्षा होते ही उनके फलों में वृद्धि प्रारंभ हो जाती है, जैसे– आंवला, करौंदा आदि।

शुष्क क्षेत्रों में पादप प्रवर्धन की विधियां :–

शुष्क क्षेत्रों में पौधे के जमाव विकास एवं संरक्षण में विशेष चुनौतियां पाई जाती है। अतः इनके लिए विशेष प्रबंधन आवश्यक है। शुष्क क्षेत्रों में पौधे इस प्रकार प्रवर्धित किया जाए कि वृक्षों की मूसला जड़ नष्ट न हो। इसके लिए या तो बीजू पौधे बाग में लगाने के पश्चात् वहीं पर कलम चढ़ाई जाए अथवा नाली पद्धति द्वारा कलमी पौधे बनाए जाए।

(1) नाली पद्धति द्वारा पौधे तैयार करना – यह विधि मुख्य रूप से बेर में काम ली जाती है। इस विधि में मूल वृन्त 25 × 12 सेमी. की पॉलिथीन की नालियों में 1 : 1 : 1 के अनुपात से चिकनी मिट्टी, बलुई मिट्टी और गोबर की खाद का मिश्रण भर देते हैं। इसके बाद देशी बेर के बीजों की बुवाई मार्च माह में

करते हैं। लगभग 3 महीने बाद (जुलाई) पौधे कलिकायन के लिए तैयार हो जाते हैं। अगस्त में उन्नत किस्म के पौधों से अच्छी कलिकाओं को निकालकर "टी बडिंग" या "आई बडिंग" की विधि से कलम लगा देते हैं। लगभग 30–40 दिन बाद पौधा खेत में स्थानांतरण के योग्य हो जाता है।

(2) सॉफ्ट वुड ग्राफ्टिंग पद्धति – यह विधि मुख्य रूप से आंवला, अमरूद, जामुन, फालसा आदि फलवृक्षों में अपनाते हैं। इसके लिए बीजू पौधों को बाग में लगने के पश्चात् उचित मौसम में वहीं पर कलम चढ़ाई जाती है, जिससे पौधे का जड़तंत्र अधिक विकसित हो जाता है और आसानी से सूखा सहन कर लेता है।

मुख्य कृषण क्रियाएं :–

पौधों को उनकी आवश्यकता के अनुसार समय–समय पर सिंचाई, निराई–गुड़ाई, जल प्ररोहों को काटना पौधों को स्वस्थ रखने के लिए अवांछित रोगग्रस्त शाखाओं का कृंतन तथा पौधों का ढांचा बनाने के लिए ट्रीमिग आदि कार्य करते रहना चाहिए। अच्छे फल व अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पौधों को कीट एवं व्याधियों से पूर्ण सरंक्षण प्रदान करना चाहिए। सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति हेतु उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव समय–समय पर करते रहना लाभदायक रहता है। उचित समय पर फलों की तुड़ाई, विपणन आदि कार्य भी करते रहना चाहिए।

○○○

13

निद्रा : एक अध्ययन

डॉ. जे. एल. अग्रवाल

पर्याप्त समय की आरामदायक नींद सभी के लिए आवश्यक है। सभी स्तनधारी व पक्षी सोते हैं, कुछ मछलियां भी सोती हैं। लगभग एक तिहाई जीवन हम सोने में व्यतीत करते हैं। जीवित रहने के लिए नियमित नींद आवश्यक है, पर नींद की शरीर के लिए क्या उपयोगिता हैं, नींद कैसे आती है, इसकी जानकारी अधूरी है।

निद्रा के चरण :–

सोते समय नींद एक जैसी नहीं होती, बल्कि चक्रीय रूप से चरणों में होती है। इन चरणों में शरीर में भिन्न–भिन्न बदलाव होते हैं और इन चरणों की प्रक्रिया भी भिन्न होती है। साथ ही संभवतः इनके शरीर के लिए कार्य भी भिन्न होते हैं। मानव व अन्य स्तनधारी पशु–पक्षियों में नींद मुख्यतः दो चरणों – अद्रुत नेत्र गति मुद्रा (नॉन रैपिड आई मूवमेंट स्लीप) और द्रुत नेत्र गति मुद्रा (रैपिड आई मूवमेंट स्लीप) में होती है। अमेरिकी एकडेमी ऑफ स्लीप मेडिसीन के ए.आई.ई.एम. ने एन.आर.ई.एम. निद्रा को तीन चरणों – एन–1, एन–2, एन–3 में विभाजित किया है। यह विभाजन नींद के दौरान हो रहे मस्तिष्क की विद्युत तरंगों (ई.ई.जी.) में बदलाव के अनुसार होते हैं। रात को निद्र एन–1, एन–2, एन–3, एन–2 आर.ई.एम. निद्रा चक्र में होती है। पूरा चक्र 90 से 110 मिनट का होता है। रात में ऐसे 5–6 चक्र होते हैं। रात की शुरूआत में एन–3 की अवधि और बाद में आर.ई.एम. की अवधि ज्यादा होती है।

अद्रुत नेत्रगति निद्रा :–

एन–1 चरण – सामान्यतः जागृत अवस्था में सक्रिय होने पर बीटा तरंगे उत्पन्न होती हैं, इनका आवर्तन 13–20 प्रति सेकंड और ऊंचाई 5–10 माइक्रोवोल्ट होती है। आंखे बंद करने, मस्तिष्क के शांत होने पर ऐल्फा तरंगे, जिनका आवर्तन 8–13 प्रति सेकंड होता है, नींद की शुरूआत में तरंगों की गति कम होकर 4–7 प्रति सेकंड हो जाती है, ये थीटा तरंगे कहलाती हैं। यह हल्की निद्रा की अवस्था होती है। इस दौरान पेशियों में हल्के संकुचन हो सकते हैं। कुछ व्यक्तियों में इस दौरान भ्रम की स्थिति हो सकती है। पेशियों का तनाव थोड़ा कम हो जाता है। वातवरण से संबंध टूट जाता है।

एन–2 चरण – इस चरण में उपर्युक्त तरंगों के मध्य तेज तरंगो (11–16 प्रति सेकंड) के समय–समय पर समूह आते हैं। ये निद्रा तर्क (स्लीप स्पिंडल) कहलाते हैं, इनकी ऊँचाई बढ़ती है फिर घटती है, साथ ही ऊँची तरंगे जिनको 'कॉम्पलेक्स' कहते हैं, मिलती हैं। इस दौरान पेशियों का तनाव पहले से कम हो जाता है। यह पहले चरण से ज्यादा गहरी निद्रा की अवस्था है।

एन–3 चरण (गहरी निद्रा अवस्था) – इस चरण में मस्तिष्क की विद्युत तरंगें और धीमी हो जाती हैं, 20 प्रतिशत से ज्यादा अवधि में 0.5 से 2 प्रति सेकंड की डेल्टा तरंगें उत्पन्न होती है, इनकी ऊँचाई 75 माइक्रोवोल्ट से ज्यादा होती है। यह पहले से ज्यादा गहरी निद्रावस्था होती है। इस दौरान सोते समय चलने, बिस्तर पर पेशाब निकलने, रात को सोते समय डर लगने की समस्याएं हो सकती हैं।

अद्रुत नेत्र गति मुद्रा (एन.आर.ई.एम.) नींद की

अवस्था में हृदय गति, रक्त दाब, शरीर का ताप व श्वसन गति कम हो जाती है, जबकि आंतों की सक्रियता बढ़ जाती है।

द्रुत नेत्र गति निद्रा :–

नाम के अनुसार इस चरण में सोते समय आंखों की पुतलियां तेजी से घूमती हैं। इसकी अवधि कुल नींद का करीब 20 से 25 प्रतिशत होती है। इस दौरान ई.ई.जी. में छोटी तेज तरंगे–जागृत अवस्था सदृश होती हैं। पेशियों का तनाव (श्वसन, आंखों व कान की पेशियों को छोड़कर) लगभग समाप्त हो जाता है। याद रखने वाले स्वप्न इसी अवधि में आते हैं। इस चरण में श्वसन, हृदयगति तेज, अनियमित हो जाती है। पुरुषों के लिंग में तनाव तथा महिलाओं के योनि से स्राव हो सकता है। यह नींद की सबसे गहरी अवस्था होती है। इस समय मस्तिष्क की सक्रियता बढ़ जाती है। यदि इस चरण में पेशियों का तनाव कम नहीं होता तो वह स्वप्न देखकर वैसी ही हरकत कर सकते हैं जो खतरनाक हो सकती है। सपना देखकर लड़ या हिंसा कर सकते हैं। ये समस्याएं आर.ई.एम. (स्लिप डिसआर्डर) कहलाती हैं।

मानव की नींद की आवश्यकता

नींद की जरूरत हर व्यक्ति में भिन्न होती है। जिस अवधि की नींद लेने के पश्चात् व्यक्ति दिनभर उनींदे नहीं रहते, दिनभर स्फूर्ति रहती है, उनके लिए वह पर्याप्त मानी जाती है। शोधों से सिद्ध हुआ है कि 6–7 घंटे प्रतिदिन सोने वालों की आयु लंबी होती है। जो व्यक्ति 7–8 घंटे प्रतिदिन सोते हैं, उनकी मृत्युदर 6–7 घंटे सोने वालों की अपेक्षा ज्यादा होती है। साथ ही पर्याप्त नींद न सोने वालों में हृदय रोगों का खतरा दो गुना ज्यादा पाया गया है।

नींद की औसतन आवश्यकता आयु पर निर्भर रहती है। नवजात शिशु दिन में 18 घंटे तक सोते हैं। एक से बारह माह के शिशु 14 से 18 घंटे, एक से तीन वर्ष के बच्चे 12 से 15 घंटे, तीन से पांच वर्ष आयु में 11 से 13 घंटे, पांच से बारह वर्ष में 9 से 11 घंटे, किशोरवस्था में 9 से 10 घंटे नींद की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में महिलाओं को सामान्य से एक घंटा ज्यादा नींद की जरूरत होती है। वृद्धावस्था में कुल नींद की जरूरत वयस्कों सदृश ही रहती है पर इनको लगातार नींद नहीं आ पाती, गहरी नींद की अवधि कम हो जाती है। आर.ई.एम. निद्रा भी कम हो जाती है।

पर्याप्त नींद न आने के दुष्प्रभाव

पर्याप्त नींद न आने पर उलझन व बेचैनी होती है। सोचने, समझने व निर्णय लेने की क्षमता बाधित हो जाती है, मूड बिगड़ जाता है, याद्दाश्त कम हो सकती है व जम्हाइयां आती हैं। साथ ही शरीर की प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है। संक्रामक रोग आसानी से हो सकते हैं, हृदय गति तेज हो जाती है, कार्य व सोचने की प्रक्रिया धीमी गति से होती है, हाथों में कंपन होता है एवं शरीर में दर्द होता है। लंबे समय तक अनिद्राग्रस्त होने पर मोटापे, मधुमेह, हृदय रोगों, शरीर का ताप कम होने की संभावना बढ़ जाती है। बच्चों में नींद की कमी होने पर शारीरिक, मानसिक विकास प्रभावित होता है। अनिद्राग्रस्त होने पर मानसिक रोगों, अवसाद व उन्माद (मेनिया) होने की संभावना ज्यादा हो जाती है। रोगी के शराब एवं नशीले पदार्थों की लत पड़ जाने की संभावना भी बढ़ जाती है।

नींद की समस्याएं होने पर ई.ई.जी. में विभिन्न बदलाव हो सकते हैं। डेल्टा तरंगें कम हो सकती हैं, आर.ई.एम. नींद में बदलाव हो सकते हैं।

नींद के प्रकार्य

नींद क्यों आवश्यक है? इसका पूर्णतः सही उत्तर अभी तक नहीं मिल पाया है। संभवतः नींद के निम्नांकित प्रकार्य है–

- पर्याप्त समय तक आराम से सोने से शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं।
- नींद सामान्य याददाश्त, एकाग्रता व सीखने की क्षमता के लिए आवश्यक है।
- नींद के दौरान शारीरिक टूट–फूट की मरम्मत होती है, घाव तेजी से भरते हैं। पर्याप्त नींद न आने पर प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है।
- एन.आर.आई.एम. नींद शारीरिक विकास में सहायक होती है। इस दौरान पिट्यूटरी ग्रंथि से वृद्धि हॉर्मोन

ज्यादा मात्रा में स्रावित होता है। रात को सोते समय पिनियल ग्रंथि से मेलोटोनिन हॉर्मोन का स्राव बढ़ता है। यह मानसिक संतुलन ठीक रखता है। टूट–फूट की मरम्मत होने के कारण एन.आर.ई.एम. शारीरिक थकान दूर करती है। यह कार्यरत याद्दाश्त के लिए आवश्यक है। कार्यरत याद्दाश्त के कारण आप सोच सकते हैं, सही निर्णय ले सकते हैं। यह नया कार्य सीखने के लिए भी आवश्यक होती है।

- आर.ई.एम. नींद मस्तिष्क के विकास, संतुलन के लिए आवश्यक होती है। गर्भस्थ शिशु और शिशु का ज्यादातर समय आर.ई.एम. नींद में व्यतीत होता है। समय–पूर्व जन्में अपरिपक्व नवजात शिशु ज्यादा समय आर.ई.एम. नींद में व्यतीत करते हैं। यह नींद नई तकनीक सीखने व सही ढंग से कार्य करने के लिए आवश्यक होती है।
- नींद के दौरान विभिन्न स्नायुओं के मध्य प्रगाढ़ व अंतर्ग्रथन होता है जोकि याद्दाश्त, सीखने व अनुभव के लिए आवश्यक होता है।
- नया कार्य सीखने के लिए याद्दाश्त व ज्ञान को बनाए रखने में पर्याप्त नींद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- आर.ई.एम. नींद के दौरान स्वप्न आते हैं। स्वप्न क्यों आते हैं? इसकी क्या उपयोगिता है? इस संबंध में भी अनेक अभिमत हैं। फ्रायड के अनुसार, मस्तिष्क में समाई अनचाही इच्छाओं की अभिव्यक्ति संकेत रूप में स्वप्नों के माध्यम से अभिरिक्त होती है, जिससे मानसिक संतुलन होता है।

अन्य विद्वानों की मान्यता है कि दिन की विभिन्न घटनाओं, अनुभवों को आर.ई.एम. नींद के दौरान मस्तिष्क में व्यवस्थित ढंग से रखने का कार्य होता है, जिसके लिए मस्तिष्क के स्नायु उत्तेजित होते हैं। विभिन्न स्थानों की मस्तिष्क की उत्तेजना के हिसाब में मस्तिष्क का अग्र भाग एक कहानी गढ़ने का प्रयास करता है, जोकि स्वप्न होता है। अतः स्वप्न अक्सर अजीबो–गरीब हो सकते हैं।

आरामदायक नींद के पश्चात् आप फिर अगले दिन जीवन की चुनौतियों का मुकाबला करने में सक्षम हो जाते हैं।

ooo

14

खगोलीय पिंड अनुसंधान अभियान

दीपक गुप्ता

रात्रि के समय जब नीले–काले स्याह आकाश में किसी दीप्त बिंदु से एक सीधी रेखा में चमकदार वस्तु को धरती पर आते देखते हैं तो अंगुली से इंगित कर कह उठते है, टूटता हुआ तारा देखो। लेकिन वह कोई तारा नहीं खगोल विज्ञानियों के अनुसार उल्का है। पृथ्वी की निश्चित कक्षा/परिक्रमा पथ को धूमकेतु (गैस और वर्फ धुलि पूछांकृति पिंड–हैली, एंकी, स्विफ्ट ट्टल आदि) और क्षुद्र ग्रह (मंगल और बृहस्पति के मध्य लघु खंडित प्रस्तरीय ग्रह पट्टिका–प्लास, जुनो, वेस्टा, इरोज आदि) की उत्केंद्रित और अनिश्चित कक्षा काटती है, तो पृथ्वी पर इनके खंड, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायुमंडल में तीव्र गति (12–70 किमी प्रति सैंकंड) से प्रवेश करते है। इस घर्षण से वह ज्वलनशील हो कर पृथ्वी पर राख के रूप में पहुंचते है। ये उल्काएँ अंतरिक्ष में विचरण करने वाले सूक्ष्म खगोलीय पिंड है। इनसे कोई क्षति नहीं होती। (कार्ल सैगन, 1985)

वे उल्काएं जो बड़ी (सिक्के के आकार से विशाल आकार) होती हैं तथा मार्ग में नष्ट न होकर पृथ्वी के धरातल तक पहुंचती है उन्हें उल्का प्रस्तर (कोनड्राइट) कहते है। सबसे बड़ा ज्ञात उल्का प्रस्तर ग्रुट फोनटेन, होबा वेस्ट, नामिबिया (अफ्रीका) में मिला है। इसका वजन 60 टन है। इसका आकार 2.75 मी. × 2.43 मी. है। भारत में इलाहाबाद के निकट 56 किलो वजन का उल्का प्रस्तर मिला है। राजस्थान में डीडवाना (1991), होहावट व देवरी खेडा (1994), इटावा भोपजी (1996) में उल्कापात हो चुका है।

ये तीन प्रकार की होती हैं– प्रथम, शैल उल्का, जिसे एयरोलाइट कहते है जिसमें पत्थर जैसी संरचना होती है। 20 जून 1996 को पीपलिया कलां (पाली) में इसी प्रकार का उल्कापिंड गिरा था। द्वितीय, धात्विक उल्का को सिडेराइट कहते है। कभी–कभी इसमें खनिज मिलने के कारण इसे उमरानोलिथ भी कहते है। 29 अगस्त 2005 को कंवरपुरा रावतभाटा (चित्तौडगढ़) में 6 किलो भार का उल्कापिंड गिरा था जिसमें 91% लोहा, 8.5% निकैल, 0.4% कोबाल्ट था। तृतीय, प्रस्तर धात्विक उल्का जिसे सिडेरोलाइट कहते है जिसमें दोनों के अंश मिले रहते है। इस प्रकार का उल्का पिंड भवाद (जोधपुर) में गिरा था।

कभी–कभी उल्काएं धरातल के समीप आकर नष्ट होती है तो उसे अग्निपिंड (बोलाइड) कहते हैं। 30 जून 1908 को साइबेरिया के तुगुंस्का में इसी प्रकार की उल्का गिरी थी। इसकी आवाज 700 किमी. तक सुनी गई। 80 किमी. दूर के मकानों के कांच टूट गए, 1500 रेनडियर मारे गए तथा 2 किमी. क्षेत्र के पेड़ जल गए।

जब ये उल्काएं पृथ्वी पर गिरती है तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी पर गहरा गढ्ढा बनाती है, लेकिन पृथ्वी की चट्टानों का लचीलापन उल्कापिंड को बाहर धकेलता है। (मेलोश, 1999)

अधिक ताप (केल्विन) और अधिक दाब (मेगाबार) से आवेग की उत्पत्ति होती है। यह आवेग 2 से 100 जीपीए तक होता है। इस प्रकार पृथ्वी पर एक संघट्ट विवर का जन्म होता है। यह दो प्रकार का होता है– प्रथम, साधारण विवर (कम ताप व कम दाब) तथा

द्वितीय, मिश्रित विवर (ज्यादा ताप व ज्यादा दाब)। (ग्रीव संयुक्त, 2002, आकृति 1)

विवर के प्रकार

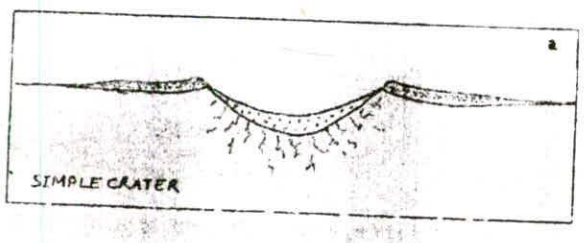

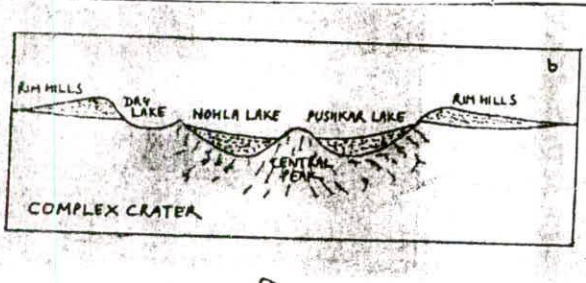

चित्र–1

विश्व में अब तक 170 विवर खोजे गए हैं भारत में 5 विवर लोनार (महाराष्ट्र), ढाला (मध्यप्रदेश), शिवा (अरब सागर), लुना (गुजरात) तथा रामगढ (राजस्थान) में स्थित हैं। (दीपक गुप्ता संयुक्त, 2008)

रामगढ को बहिःक्षत संरचना (एस्ट्रोब्लेम) माना जाता है क्योंकि यह पूर्ण प्रमाणिक विवर नहीं है। ग्रीक शब्द एस्टर का अर्थ तारा तथा ब्लीम का अर्थ घाव अर्थात् तारों द्वारा घाव होता है। इसकी प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने–अपने तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। रामगढ बारां में उल्कापिंड की खोज के लिए कई बार क्षेत्र की यात्राएं की गई और विभिन्न चट्टानों का अध्ययन किया गया।

शोध विधि

क्षेत्र में शोध के लिए सर्वप्रथम नवीनतम सूचनाएं इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त की गई। द्वितीय, प्रमुख पुस्तकों से विविध संकलन किया गया। तृतीय, क्षेत्र का मानचित्रीकरण किया गया। चतुर्थ, क्षेत्र में मिली शैलों की प्रयोगशाला में गहन जांच की गई और विश्लेषण किया गया।

अध्ययन क्षेत्र

रामगढ एस्ट्रोब्लेम, किशनगंज तहसील, बारां जिला, राजस्थान में स्थित हैं। बारां से इसकी दूरी 25 किमी. है। रामगढ एस्ट्रोब्लेग 25° 20′ उत्तर और 70° 37′ 30″ पूर्व में अवस्थित है (आकृति–3)। जो एक 16 वर्ग किमी. का गोलाकार क्षेत्र है। इसके किनारों पर खड़ी पहाड़ियों की औसत ऊँचाई 200 मी. तथा सबसे ऊँची चोटी 240 मी. है। पहाड़ियों से मलबा नीचे सरक कर आता रहता है। (शर्मा, 1973)

रामगढ बहिःक्षत संरचना

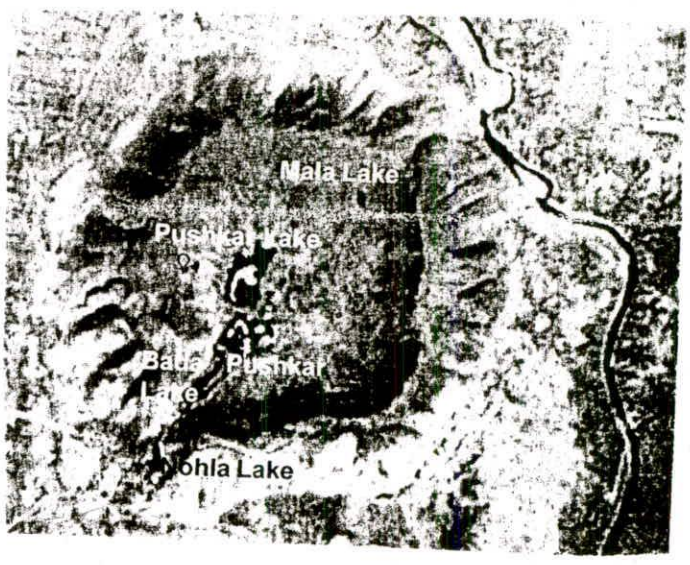

आकृति 2 : आकाश शटल का चित्र

यहाँ तीन झीलें अवस्थित है:–

1) माला झील
2) पुष्कर झील
3) नोहला झील

नोहला झील में हमेशा पानी भरा रहता है जबकि पुष्कर झील और माला झील गर्मियों में सूख जाती है। सूखने पर पुष्कर झील में कृषि कार्य किया जाता है। विवर के बाहर भी एक झील है जो हमेशा सूखी रहती है।

लगभग मध्य में एक छोटी पहाड़ी जैसी आकृति है जिसके समीप विश्व प्रसिद्ध भंडदेवरा शिवमंदिर है जो लघु खजुराहों के नाम से भी जाना जाता है।

परिणाम

वर्ष 2008 से जुलाई 2009 के मध्य 7 चुंबकीय शैलों को रामगढ एस्ट्रोब्लेग में विभिन्न स्थानों से खोजा गया। ये विशेष आकृतियां उल्कापिंड जैसी दिखती थी। उनका रंग भूरा और आकार बेड़ोल था (आकृति–4)। उनका विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उनमें सिलिका, ऐलुमिना, मेग्नेटाइट, मैगनीज, निकैल और क्रोमियम धातु पाई गई है। निकैल धातु अधिकतर उल्कापिंडों में मुख्य रूप से पाई जाती है। (क्राउफोर्ड, 1998)

शैलों में चुंबकीय गुण पाए जाने का कारण धात्विक (लोह) उल्कापिंड, सौर मंडल के विभिन्न ग्रहों और उपग्रहों के चुंबकीय क्षेत्रों से होकर गुजरते हैं। वहां से ये उल्कापिंड चुंबकीय गुण ग्रहण करते हैं। जब ये उल्कापिंड के रूप में धरती से टकराते हैं तो यह चुंबकीय गुण, उल्कापात स्थान पर स्थानीय चट्टानों में भी आ जाता है।

सभी विवरों में चुंबकीय गुण नहीं पाए जाते। विश्व के ज्ञात विवरों में केवल 4% में चुंबकीय गुण पाए जाते हैं। जिसमें बेरिंगर विवर (एरिजोना, यू.एस.ए.), कुर्स्क विवर (रूस), करानकस विवर (पेरू), लप्पाजारवी (फिनलैंड), ब्रेडफोर्ट (द. अफ्रीका), स्लेट द्वीप (कनाड़ा), रोचे चाऊत (फ्रांस), बासुमतवी (घाना) आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

यहाँ खोजे गए चुंबकीय शैल और उल्कापिंड के मध्य एक कड़ी है, जो यह सिद्ध करती है कि इस क्षेत्र में प्राचीन काल में उल्का प्रस्तर गिरा था और इससे संघट्ट विवर का जन्म हुआ। इन चुंबकीय पत्थरों की जांच भौतिकी शोध प्रयोगशाला, अहमदाबाद में डॉ. भंडारी द्वारा भी की जा रही है, जो लेखक द्वारा उन्हें प्रदान किए गए हैं। इससे दोनों जगहों पर हुए चुंबकीय पत्थरों के प्रयोग का विश्लेषण हो सकेगा।

लेखक द्वारा रामगढ क्षेत्र की खोज यात्रा हर माह की जाती है ताकि उल्कापिंड की खोज की जा सके और रामगढ को नासा खगोलविज्ञानी पथ–प्रदर्शक विवरण में संघट्ट विवर का दर्जा दिया जा सके तथा इस विवर का मानवीय हस्तक्षेप (अवैध अतिक्रमण और प्रदूषित झीलों) से बचाया जा सके। जिससे इस विज्ञान से जुड़ी विश्वस्तरीय धरोहर का अवलोकन चिरकाल तक सभी कर सके।

○○○

संदर्भ सूची

1. कार्ल सैगन, एन ड्रुयान (1985), "उल्का" रैन्डम हाउस पब्लिकेशन, न्यूयार्क, यू.एस.ए.।
2. क्राउफोर्ड, डी. ए. और पी. एच. शुल्ज (1988), "प्रयोगशाला में संघट्ट निर्मित चुंबकीय क्षेत्र की जांच", नेचर 336, पृ. 50–52
3. ग्रीव, रि. ए. एम. थोरियोल्ट, मा. पिलकिंगटन (2002), "संघट्ट विवरों की प्रामणिकता", क्रेच भौगोलिक सर्वेक्षण, अंक 77, सं. 4, पृ. 253–263
4. दीपक गुप्ता, डॉ. क. हिरोनी (2008), "रामगढ– गोलाकार आकृति" शोध स्मारिका, 36वीं आरजीए गंगानगर, पृ. 21–23
5. दीपक गुप्ता, डॉ. क. हिरोनी (दिसबंर, 2008), "रामगढ की झीलों का PH मान" शोधपत्र प्रस्तुति, भारतीय भूगोल कांग्रेस, इलाहाबाद (यू.पी.)
6. दीपक गुप्ता, डॉ. क. हिरोनी (जनवरी, 2008), "रामगढ में तरंगित त्रिकोण शैलों की खोज" शोधपत्र प्रस्तुति, विश्व भौगोलिक सेमिनार, अलीगढ, (यू.पी.)
7. दीपक गुप्ता, डॉ. क. हिरोनी (सितबंर, 2009), "रामगढ में प्रलयकारी चट्टानों की खोज" शोधपत्र प्रस्तुति, 37वीं आरजीए, जयपुर।
8. शर्मा, एच. एस. (1973), "नेचर" अंक 242, पृ. 39–40
9. वाराहमिहिर कृत वृहत् संहिता – दिल्ली प्रकाशन, नं.–22 से 33, पृ. 159–161
10. मेलोश एच. जे. (1989), "संघट्ट विवर – एक भौगोलिक प्रक्रिया" ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, न्यूयॉर्क।

15

जल संकट : कारण एवं निदान

डॉ. नीरजा श्रीवास्तव

जल बिना जीवन की परिकल्पना संभव नहीं है। इतिहस साक्षी है कि अधिकांश सभ्यताएं नदी के किनारे ही विकसित हुई हैं। विज्ञान की दृष्टि से परिभाषित किया जाए तो प्रत्येक खाद्य–श्रृंखला, स्थलीय एवं जलीय परितंत्रों में जीवों के विकास एवं पोषण हेतु जल का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय प्राचीन संस्कृति में "जल" को पूजा जाता है, जल के महत्वपूर्ण स्रोत नदियों को पूजनीय माना गया है। गंगा नदी को "माँ" का दर्जा दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि "गंगा" जीवनदायनी के साथ–साथ "मोक्षदायनी" भी है। भारतीय संस्कृति में ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व में "जल" की महत्ता सर्वमान्य है। पर्यावरण विशेषज्ञ "स्मिथ" ने जल के महत्व को व्यक्त करते हुए लिखा है कि "जल दुनिया का सबसे मूल्यवान संसाधन" है।

प्रकृति में हर संसाधन का एक निर्धारित चक्र है, जब तक यह चक्र निर्बाध चलता है, प्रकृति फलती–फूलती है तथा मुक्त हाथों से अपने खजाने को जीव–जंतुओं को लुटाती है एवं इन्हें फलते–फूलते देखकर गौरवान्वित होती है। प्रकृति का प्रत्येक संसाधन हर जीव के लिए समान रूप से उपलब्ध है। मानव जाति को छोड़कर हर जीव सिर्फ अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रकृति के संसाधनों का उपयोग करता है।

पृथ्वी पर रहने वालो जीवों में "मानव" सर्वाधिक बुद्धिमान है। प्रकृति अपनी इस कृति पर गर्व करती है, किंतु मानव ने स्वार्थवश सिर्फ अपने विकास पर आत्मकेंद्रित होकर प्रकृति को अपने अधीन करने का दुस्साहस किया है। अपने विकास की अंधाधुन दौड़ में उसने प्रकृति को निरंतर नुकसान पहुँचाया है। प्रारंभ में प्रकृति में मानव जाति की इन हरकतों को नज़रअंदाज किया, किंतु अब प्रकृति ने अपना "रौद्र रुप" दिखाना प्रारंभ कर दिया है। उसने स्पष्ट संकेत देने प्रारंभ कर दिए हैं कि "बस अब और नहीं"। गत वर्षों में आई सुनामी लहरे, बढ़ता तापमान, अतिवृष्टि इस दिशा में संकेत कर रहे हैं कि प्रकृति हम से नाराज़ हैं।

प्रकृति ने बता दिया है कि हमें उसके द्वारा प्रदत्त विभिन्न संसाधनों जिसमें "जल" प्रमुख है, का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करना होगा, क्योंकि पृथ्वी पर पीने योग्य जल की मात्रा सिर्फ तीन प्रतिशत है। पीने योग्य जल की मात्रा भी कुल मात्रा में से सिर्फ एक प्रतिशत जल का उपयोग ही हम कर पाते हैं। प्रकृति में अन्य चक्रों की भाँति "जल–चक्र" भी निर्बाध रुप से चलता है, किंतु औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरणीय प्रदूषण आदि कारणों से जल संकट एवं जल प्रदूषण बढ़ रहा है, जिससे "जल–चक्र" में विकृति उत्पन्न हो रही है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी "जल संकट" गंभीर रुप धारण कर चुका है। वांशिग्टन स्थित वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट के अनुसार भारत को वर्ष 2020 के बाद गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। घटती स्वच्छ जल उपलब्धता एवं बढ़ती मांग स्थिति को और विकट बना रही है।

जल के अंधाधुन उपयोग से "भूजल–स्रोतों" का जल–स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई हेतु 40% जल की पूर्ति भू जल स्रोतों के माध्यम से हो रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में ट्यूब वेल एवं हैडपंपों के बढ़ते उपयोग ने भूमिगत जल स्रोतों के सर्वाधिक हानि पहुंचाई है। भूजल के अनियंत्रित उपयोग के कारण उसका दुरुपयोग ज्यादा होता है। वास्तविक रूप से सिंचाई एवं अन्य कार्यों हेतु जितनी जल की आवश्यकता होती है, उससे ज्यादा जल व्यर्थ बहाया जाता है। एक शोध के अनुसार, यदि कृषि–क्षेत्र में जल का उपयोग विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक विधि से किया जाए तो लगभग 20% जल की बचत की जा सकती है। शोध निष्कर्ष बताते हैं कि सिंचाई व्यवस्था में प्रबंधन के अभाव के कारण खेतों तक सिर्फ 55% ही जल पहुंचता है, शेष 45% जल व्यर्थ ही जाता है। ऐसे में अलवण जल के संरक्षण की आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब उचित जल प्रबंधन हो।

अलवण जल संकट का कारण सिर्फ खराब जल–प्रबंधन ही नहीं है, वरन् बढ़ता प्रदूषण भी इसे विकराल बना रहा है। नदियों किनारे संचालित उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषक भी स्वच्छ जल को दूषित कर पीने योग्य जल की उपलब्धता में कमी ला रहे हैं।

घटते वन एवं बढ़ती जनसंख्या भी जल संकट एवं जल–प्रदूषण का महत्वपूर्ण कारण है। घटते वनों की स्थिति पर संयुक्त राष्ट्र संध की "ग्लोबल एनवायरमेंटल आउटलुक" ने स्पष्ट किया है कि वनों के अभाव के कारण मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ सतह वर्षा में बह जाती है और भूमि बंजर हो जाती है। यदि ऐसी स्थिति बनी रही तो विश्व की लगभग आधी आबादी को जल की कमी का सामना करना होगा। भूजल की कमी के कारण भूपृष्ठ पर हवा का दबाव बढ़ता जा रहा है जिससे भूकंप की संभावना बढ़ती है। गत वर्षों में भूकंप में होने वाली वृद्धि इसी दिशा की ओर संकेत करती है। जल संकट अप्रत्यक्ष रूप से हमारी विकास दर को भी प्रभावित कर रहा है। जल प्रबंधन एवं सभी को स्वच्छ जल उपलब्ध कराने हेतु सरकार इस दिशा में काफी धन लगाती है, इस धन की पूर्ति हेतु सरकार को अन्य मदो में कटौती करनी पड़ती है, जिसके कारण अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अतः आज आवश्यक हो गया है कि हम सचेत हो जाएं और जल के महत्व को समझते हुए जल संकट को विकराल रूप लेने से रोकें क्योंकि अभी भी बहुत देर नहीं हुई है। कहा गया है "जहाँ जागो वहीं सवेरा।" अतः हमे मिलकर जल संकट को दूर करने हेतु सघन एवं सार्थक प्रयास करने होंगे ताकि हम अपने पूर्वजों की धरोहर को आने वाली पीढ़ी को उत्तम रूप में हस्तांरित कर सकें। इस विश्वव्यापी समस्या के निदान हेतु हम निम्न बिंदुओं पर कार्य कर सकते है–

1. हरे वृक्षों की पट्टियों का विस्तार किया जाए। नदियों के किनारे अधिकाधिक हरितपट्टियाँ विकसित की जाए ताकि प्रदूषण के साथ–साथ भूमि क्षरण व कटाव को भी रोका जा सके।
2. किसानों द्वारा खेतों के बीच में मेड़ ऊँची कर मिश्रित वन लगाए जाए, जो लकड़ी, ईंधन, खाद्यान्न की पूर्ति के साथ–साथ भूमि व जल संरक्षण भी करे।
3. प्राकृतिक खेती एवं कृषि वानिकी को प्रोत्साहित किया जाए।
4. नदियों, नहरों, तालाबों, से सिंचाई हेतु स्वेदशी तकनीक अपनाने को प्रोत्साहित किया जाए।
5. कृत्रिम कीटनाशियों, रासायनिक खाद आदि के उपयोग को कम करने एवं इसके स्थान पर प्राकृतिक कीटनाशियों एवं जैविक खाद के उपयोग को प्रोत्साहित करें।
6. प्रत्येक गाँव में तालाब का निर्माण कर वर्षा के जल को एकत्र कर उसे उपयोग में लाकर वर्षा जल को व्यर्थ होने से बचाया जा सकता है।
7. प्रत्येक गाँव में अपशिष्ट (कचरे) के एकत्रीकरण एवं निपटान की पुख्ता व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वे जल स्रोतों को प्रदूषित न कर पाएं।
8. नए हैंडपंपो व नलकूपों की खुदाई से पूर्व सरकार की अनुमति ली जाए।
9. प्रत्येक घर के लिए "जल–संकट" का निर्धारण किया जाए।
10. सिंचाई के दौरान जल–अपव्यय को रोकने हेतु बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति व अन्य उन्नत तकनीकों के प्रयोग को बढ़ाया जाए।
11. स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से जल–संकट एवं जल–प्रदूषण के बारे में जन जागृति उत्पन्न की जाए क्योंकि सिर्फ सरकारी प्रयास ही सार्थक नहीं है।
12. विद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम में ऐसे बिंदु जोड़े जाएं जो भावी पीढ़ी को जल की महत्ता को समझने के लिए प्रेरित कर सकें।
13. जल प्रबंधन, जल संरक्षण आदि कार्यक्रमों से जन–साधारण को जोड़ा जाए।

ooo

16

स्थानीय अनाज : स्वाद एवं स्वास्थ्य का खजाना

डॉ. नवीन कुमार बोहरा

मानव जाति एवं पादप समुदाय का संबंध सृष्टि के प्रारंभ से है। इन पादपो का उपयोग मौसम के अनुसार स्थानीय लोग न केवल प्रोटीन, काब्रोहाईड्रेट, फॉस्फोरस आदि पोषक तत्वों की पूर्ति करने के लिए करते हैं वरन् वे प्राकृतिक स्रोत इन्हें क्षेत्र विशेष की परिस्थिति के अनुसार अपने आप को ढालने में सहायक होते हैं। भारत में विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की पारिस्थितिकी एवं प्राकृतिक संपदा मिलती है। जहां एक ओर पहाड़ी क्षेत्र साधना एवं पर्यटन के केंद्र है वहीं राजस्थान के मरूक्षेत्र के रेतीले धोरे एवं खूबसूरत इमारतें, नक्काशी एवं रंग–बिरंगे परिधान भी आकर्षण का केंद्र रहे हैं। इसी प्रकार हर क्षेत्र का अपना महत्व है।

पहाड़ी खानपान – पहाड़ी क्षेत्रों में मौसम आमतौर पर अपेक्षाकृत ठंडा रहता है तथा सर्दी में कडाके की ठंड रहती है। ऐसे क्षेत्रों में निम्न पोषक खाद्य उपयोगी रहते हैं–

(1) **मडुआ** – स्थानीय भाषा में इसे कोदो तथा इसके मीठे के कारण "पहाड़ का गन्ना" भी कहा जाता है। इसके आटे का हलवा (जिसे बाड़ी) कहा जाता है, को आयरन की अधिकता एवं पाचन–प्रक्रिया को सुगम बनाने में सहायक होने के कारण इसे प्रसवोपरांत महिलाओं को खिलाया जाता है। यह मधुमेह, खांसी, घेंघा एवं श्वास के रोगियो के लिए भी उपयोगी माना जाता है।

(2) **गहथ** – यह प्रोटीनयुक्त दाल है जिसे कुलथ के नाम से भी जाना जाता है। यह ढलान वाले खेतों में भी उग जाती है। यह जोड़ों के दर्द, मूत्ररोग, सफेद प्रदर एवं किडनी के पत्थर में उपयोगी मानी जाती है। इसकी पत्तियों का रस कानों के दर्द में उपयोगी होता है। यह दाल, गथ्वाणी, फाणा नामक स्थानीय व्यंजनों एवं भरवा रोटी तथा पकौड़ी के रूप में प्रयुक्त होती है। इसका सेवन गर्भवती महिलाओं को नहीं करना चाहिए।

(3) **नौरंगी** – इसे गुरूस, झिंलगी, संतरगी, रेयास, रंगडवास आदि नामों से स्थानीय भाषा में जाना जाता है। इसके सुंदर नौ रंग के दानों के कारण इसे "नौरंगी दाल" भी कहा जाता है। यह दाल वायु एवं पित्तनाशी है तथा पाचन व गैस में भी लाभकारी है। इसे उबालकर या कच्चा पीसकर इससे भरी रोटी, पूरी, परांठे बनाए जाते हैं। यह मांसपेशियों को तंदुरुस्त बनाने में भी सहायक है।

(4) **तोर** – पहाड़ी क्षेत्रों में हर शुभ कार्य में तोर की दाल बनाई जाती है। पथरी में तोर की पत्तियों के पाउडर का सेवन फायदेमंद होता है। इसके फूलों के काढे से खांसी, निमोनिया में आराम मिलता है। इस दाल में प्रोटीन, खनिज, कैल्सियम, कार्बोहाइड्रेट इत्यादि की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है।

(5) **झंगोरा** – इसे स्थानीय भाषा में "मादिरा" कहा जाता है तथा इसे चावल की तरह खाया जाता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, फॉस्फोरस एवं अत्यधिक कैलोरी होने के कारण यह मधुमेह एवं वसा को बढ़ने से रोकने में उपयोगी मानी जाती है। इसे पीलिया को रोकने में भी उपयोगी माना जाता है। झंगोरे की खीर एवं खाजे (बुखर्ण) के रूप में जानी जाती है। इसकी फसल के अवशेष चारे के रूप में प्रयुक्त होते हैं और इसे पीसकर दुधारू पशुओं को दिया जाता है।

(6) **कौणी** – पहाडी क्षेत्रों में यह अपने पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा होने के कारण उपयोगी मानी जाती है तथा सभी जगह मिश्रित फसल के रूप में बोई जाती है। इसे पाचन–शक्ति बढ़ाने में उपयोगी माना जाता है। स्थानीय रूप में इसे दस्त एवं निमोनिया में उपयोगी माना जाता है तथा बच्चों की छोटी माता, दादरा पूरी तरह न निकलने पर इसे छाछ में पकाकर खिलाया जाता है एक मान्यता के अनुसार इसकी फसल पकने के बाद सर्वप्रथम देवताओं को चढाई जाती है। पुलाव, पुडिंग और दलिया में इसका उपयोग किया जाता है।

(7) **भट्ट** – काला एवं सफेद भट्ट या सोयाबीन पहाडी क्षेत्रों की प्रसिद्ध दाल है। इस दाल में स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व मौजूद है। इससे शरीर ताकतवर बनता है तथा त्वचा चमकदार होती है। इसके नियमित सेवन से अनेक हानिकारक रोगों से बचाव होता है। इसे पशुओं को खिलाने से उनकी दूध देने की क्षमता बढ़ती है। यह दाल भटवाणी (फटकणी), फागा, भरवा रोटी के साथ एवं भूनकर खाई जाती है। इससे दूध, सॉस, तेल आदि बनाए जाते हैं।

(8) **उड़द** – इसे पहाड़ी इलाकों में काली दाल के नाम से जाना जाता है। इस दाल की पकोड़ियां शुभ अवसर पर बनाने का रिवाज़ है। उड़द की दाल का नियमित सेवन करने से यह हड्डी व दाँत को मजबूत बनाने एवं रक्त–निर्माण में सहायक होती है। स्थानीय पकवान "चौंसा" इसी दाल से बनाया जाता है। गाय व भैंस के बच्चा होने पर प्लेसेन्टा (अपरा) न आने पर उड़द की दाल दवा के रूप में स्थानीय तौर पर प्रयुक्त की जाती है।

(9) **लोबिया** – इसे स्थानीय भाषा में "सूंठा" के नाम से जाना जाता है। इसकी फली एवं बीज अपने पोषक तत्वों के कारण खाए जाते हैं। भरी रोटी तथा पूडी बनाने में एवं अंकुरित दाल में इसका प्रयोग होता है। लोबिया के पोधे की वृद्धि, खरपतवारों को समाप्त करती है तथा अच्छी हरी खाद के रूप में प्रयोग की जाती है।

(10) **तिल** – इसका सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व है तथा पूजा व अर्चना में इसका उपयोग होता है। इसके तेल का प्रयोग भोजन–निर्माण में किया जाता है, जो घी का एक अच्छा विकल्प है। इसका तेल भी औषधीय महत्व का है। इसका उपयोग मालिश एवं आयुर्वेदिक दवाइयां बनाने में काम आता है। केरल के प्रसिद्ध पंचकर्मा मालिश के रूप में इसके तेल की मालिश का रिवाज़ है इससे जोड़ों के दर्द से मुक्ति मिलती है, इसकी मालिश से हड्डियां सुडौल बनती हैं। तिल के लड्डू ठंड में विशेष लाभदायक हैं।

(11) **चौलाई** – इसे स्थानीय भाषा में "रामदाना, मरसा, चुवा" आदि उपनामों से जाना जाता है। इसकी पत्तियों में लोह तत्व अधिक होने के कारण यह एनीमिया से बचाता है। इसका सेवन करने वाले कभी भी कुपोषण का शिकार नहीं होते। इसका प्रयोग हरी सब्जी के रूप में किया जाता है।

(12) **राजमा** – पहाड़ी इलाको में राजमा विशेषकर प्रसिद्ध है। यह नकदी फसल के रूप में जानी जाती है। इसके हरे रहने पर सब्जी के रूप में एवं सूखने के बाद दाल के रूप में खाई जाती है। इसे मूत्रवर्धक माना जाता है। राजमा को पशुओं के लिए चारे का अच्छा स्रोत भी माना जाता है।

इसी प्रकार के अनेक खाद्य पदार्थ पहाड़ी क्षेत्रों में उत्तम खाद्य एवं औषधीय महत्व के हैं। ये पारंपरिक अनाज स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए लाभदायक है तथा साथ ही स्थानीय लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में भी सहायक है। सर्दी में पहाडी जीवन के खानपान में कुछ खास तरह का अनाज महत्वपूर्ण है। कड़कड़ाती ठंड में पहाड़ के मेहनती लोगों को उर्जा एवं स्फूर्ति प्रदान करने के लिए प्राकृतिक स्रोत महत्वपूर्ण है। पारंपरिक जैविक खेती द्वारा इन फसलों को सुरक्षित एवं संवर्धित करने की आवश्यकता है जिससे पौष्टिक एवं उत्तम खाद्य तथा रोगमुक्त जीवन संभव हो सके।

○○○

17

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

- **कंप्यूटर को मोड कर रखें जेब में**

अगर सब कुछ ठीक रहा तो आने वाले समय में कार्यालयों में आज की तरह कंप्यूटर और फोन रखने की जरूरत नहीं पड़ेगी। कनाडा के वैज्ञानिकों ने ऐसा प्लास्टिक स्मार्ट कंप्यूटर बनाया है, जो क्रेडिट कार्ड की तरह पतला और लचीला है। इसे "पेपरफोन" का नाम दिया गया है। इसकी खासियत यह है कि जगह के अनुरूम फिट हो जाता है। यह तकनीक कंप्यूटर जगत में क्रांति ला देगी।

प्रमुख शोधकर्ता "रायल वर्टिगाल" के मुताबिक 9.5 सेमी. का यह स्मार्ट कंप्यूटर भविष्य में पतले हैंडसेट और कंप्यूटर की दुनिया में क्रांति लाएगा। इसमें प्रयोक्ता को कंप्यूटर और मोबाइल फोन दोनों की सुविधाएं मिलेंगी। इससे कॉल करने, संगीत बजाने, गूगल के मानचित्र को बड़ा करने, ई–बुक को पढ़ने के लिए स्क्रीन को टच करने या बटन दबाने की जरूरत नहीं है। बल्कि इसके कमांड कोनों को मोड़ने और आगे–पीछे करने से नियंत्रित होंगे। अलग–अलग दिशा में मोड़ने के अलग कमांड होंगे। अपने लचीलेपन के कारण मौजूदा उपकरणों की तुलना में इसका रखरखाव आसान होगा। यह आपकी जेब में भी आसानी से आ जाएगा। किंग्सटन में क्वीन्स यूनिवर्सिटी में ह्यूमन मीडिया लैब के निदेशक वर्टिगाल ने कहा, "यही भविष्य है। आने वाले पांच वर्षों में सब कुछ ऐसे ही बदल जाएगा। यह कंप्यूटर कागज की तरह पतली शीट की तरह होगा। इस पर पेन से लिखा भी जा सकता है। इसके प्रयोग से भविष्य में कार्यालय में कंप्यूटर, कागज या प्रिंटर की जरूरत नहीं होगी।" इस पेपर कंप्यूटर के इस्तेमाल से कागजों की बचत होगी। एक तरह से ये पेपरलेस ऑफिस की कल्पना को पूरा कर सकता है। इसमें हर चीज डिजिटल रूप में संगृहीत रहेगी। नई पीढ़ी का यह कंप्यूटर हल्का और सस्ता होगा जिसे आसानी से कहीं भी ले जाया जा सकता है।

- **बात कीजिए, चार्ज होगा मोबाइल**

बहुत जल्द बैग में चार्जर लेकर घूमने की झंझट से छुटकारा मिल जाएगा। दक्षिण कोरियाई वैज्ञानिक ध्वनि की उर्जा में तब्दील करने वाला ऐसा यंत्र बनाने में कायमाब रहे हैं, जिसके इस्तेमाल से मोबाइल पर बात करने मात्र से ही बैटरी चार्ज हो सकेगी। नई तकनीक उपभोक्ता के आसपास हो रहे शोरशराबे या फिर मोबाइल पर बजने वाले गाने की आवाज को भी ऊर्जा में बदलने में सक्षम है।

सियोल स्थित सुंगक्यूनक्वान यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक काफी अरसे से विभिन्न प्राकृतिक तत्वों से ऊर्जा के उत्पादन के प्रयासों में जुटे थे। उन्होंने देखा कि ध्वनि एक नायाब ऊर्जा स्रोत साबित हो सकती है। इससे प्रेरित होकर वे मनुष्य की आवाज, संगीत और शोर को बिजली में तब्दील करने वाला यंत्र बनाने में कायमाब रहे। नया यंत्र मोबाइल जगत में क्रांति ले आएगा। लोग चार्जर का प्रयोग किए बगैर ही मोबाइल बैटरी चार्ज कर सकेंगे। दिल की धड़कन से एमपी–3 प्लेयर को चार्ज करने वाली तकनीक पर भी काम हो रहा है।

- **पसीने से बन रही बिजली**

पिछले तीन वर्षों से एक जिम (व्यायामशाला) चालक बोसल अपने ग्राहकों द्वारा बहाए जाने वाले पसीने का उपयोग कर रहे हैं। पसीने का उपयोग बिजली उत्पादन जैसे सकारात्मक कार्य में किया जा रहा है। बोसल का कहना है कि कई क्लांइट जब जिम में व्यायाम करते हैं तो वे उनके पसीने से 50 से 150 वाट बिजली का उत्पादन कर लेते हैं। इस बिजली को एक सप्ताह तक मोबाइल चार्ज करने में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा इस बिजली का इस्तेमाल लाइट, पंखे, स्टीरियो एवं टी.वी. चलाने में हो रहा है। बोसल का दावा है कि लोगों के पसीने से पैदा हुई बिजली से उनके जिम का बिजली बिल 60 प्रतिशत कम हो गया है। उन्होंने बताया कि वर्ष 2010 में जिम से 38 हजार किलोवाट घंटे बिजली पैदा की गई। एक तरह से यह पद्धति पर्यावरण के लिहाज से सुरक्षित मानी गई है, इसलिए इस जिम को "इकोफ्रेंडली जिम" भी कहा जाता है।

- **जीन कार्ड बताएगा कौन–सी दवा होगी कारगर**

आपके पर्स में शीघ्र ही डेबिट कार्ड जैसा एक और कार्ड होगा। लेकिन इसमें बैंक खाते का ब्यौरा नहीं होगा, बल्कि आपकी जीन कुंडली दर्ज होगी। सी.एस.आई.आर. के वैज्ञानिकों ने पहला जेनेटिक प्रोफाइल कार्ड अपने महानिदेशक समीर के. ब्रह्मचार्य को भेंट किया है।

बहुत जल्द आम लोगों को भी यह सुविधा हासिल होगी। इसमें गंभीर बीमारियों में प्रयुक्त होने वाली 127 दवाओं के शरीर पर होने वाले अच्छे–बुरे प्रभावों का भी ब्योरा है जिसमें डॉक्टर के लिए अचूक दवा दे पाना संभव होगा। इस आनुवंशिक (जेनेटिक) कार्ड के लिए सी.एस.आई.आर. जरूरी नियम बना रहा है ताकि इस तकनीक को निजी कंपनियों को अंतरित किया जा सके। ब्रह्मचारी ने बताया है कि, "हर व्यक्ति के जीन में कुछ–न–कुछ फर्क होता है। इसलिए एक दवा के दो व्यक्तियों पर अलग–अलग असर हो सकते हैं। संस्थान की कोशिश व्यक्ति–अनुसार (पर्सनलाइज्ड मेडिसन) की दिशा में है। फिलहाल दमा, कैंसर, मिर्गी, दिमागी दौरों, कुछ एंटीबायोटिक दवाओं समेत 127 दवाओं के जेनेटिक प्रोफाइलिंग के साथ सुमेलन (मैचिंग) किया गया है।" यह परियोजना सी.एस.आई.आर. के इंस्टीट्यूट ऑफ जिनोमिक्स एंड इंटीग्रेटिव बायोलॉजी (आई.जी.आई.बी.) के वैज्ञानिकों ने तैयार किया है।

- **तो आधा हो जाएगा हृदयाघात और पक्षाघात का दुष्प्रभाव**

वैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए एक नए इंजेक्शन के उपयोग से हृदयघात और पक्षाघात से प्रभावित मरीजों की स्थिति में 50 फीसदी से अधिक सुधार लाया जा सकेगा। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने बताया कि उन्होंने एक ऐसा उपचार (ट्रीटमेंट) विकसित करने में सफलता पाई है, जिससे अब पक्षाघात और हृदयघात के शिकार हुए मरीजों के दिल व दिमाग को होने वाली क्षति 60 फीसदी से अधिक कम किया जा सकेगा।

वैज्ञानिकों ने शोध के लिए चूहों और कई अन्य जानवरों पर अध्ययन किया जबकि "ह्यूमन ब्लड" पर भी इसके प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। लीसेस्टर यूनिवर्सिटी लैब में करीब दो वर्षों में विकसित की गई इस दवा की परीक्षण प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इस इंजेक्शन के प्रमुख संघटकों में शामिल एक एंटीबॉडी आघात के 12 घंटों में कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त होने से बचा सकती है। शीर्ष शोधकर्ता और इम्यूनोलॉजिस्ट प्रोफेसर विलियम श्वाबले ने बताया कि शोध के दौरान मिले तथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और इससे हृदयघात और पक्षाघात से मौत का शिकार होने वाले अधिकांश मरीजों का इलाज करने में सहायता मिलेगी। गौरतलब है ब्रिटेन में हृदयघात और पक्षाघात से सर्वाधिक लोग मौत के शिकार होते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक इस दवा के उपयोग से अंग प्रत्यारोपण के दौरान होने वाली बॉडी अटैकिंग को भी नियंत्रित करने में मदद मिलेगी।

- **आँख के इशारे से खोलो अकाउंट**

कुछ फिल्मों में आपने देखा होगा कि आँख के इशारे से गुप्त फाइलों को कंप्यूटर पर खोला जा रहा है। अब यह चमत्कार नहीं रह गया है। पहली बार इस तकनीक के जरिए उपभोक्ता अपनी आँखों के इशारे पर अपना पसर्नल अकाउंट खोल सकते हैं। न्यूयार्क की एक बायोमेट्रिक कंपनी कुछ ही महीनों में एक ऐसा स्कैनर बाज़ार में उतार रही है जिसे पर्सनल कंप्यूटर से जोड़ा जा सकता है। यह युक्ति (डिवाइस) स्टैंडर्ड बिजनेस कार्ड की साइज की है जिसका वजन मात्र 113 ग्राम है, जिसे यूएसबी केबल के जरिए कंप्यूटर से जोड़ा जा सकता है। इसका सॉफ्टवेयर एक बार संस्थापित (इंस्टॉल) करने के बाद स्कैनर के सामने आँख को रखकर किसी भी तरह का अकाउंट खोलकर आँख की पुतली को पासवर्ड के रूप मे सुरक्षित (सेव) किया जा सकता है। फिर जब भी आप फेसबुक, ट्विटर या बैंक अकाउंट को लॉग इन करेंगे तो आँख के इशारे पर ही वह खुलेगा। इस तकनीक के बाद एकाउंट को हैक करना आसान नहीं रह जाएगा।

- **धड़कन नापेगी कार**

दिल के मरीजों के लिए एक अच्छी खबर है। हृदयगति नपवाने की खातिर जब उन्हें बार–बार अस्पताल के चक्कर नहीं काटने पड़ेंगे। बस कार में बैठने मात्र से ही उनके डाक्टर को उनके दिल का हाल मिल जाएगा।

जी हाँ, जानी–मानी ऑटोमोबाइल कंपनी "फोर्ड" ने हृदयगति नापने वाली विशेष सीट से लैस एक कार बनाने की घोषणा की है। मधुमेह और हृदय रोगों से पीड़ित मरीज इस सीट से सबसे ज्यादा लाभान्वित होंगे। रिपोर्ट के मुताबिक यह सीट एक खास संवेदक (सेंसर) से लैस होगी, जो पल–पल उस पर बैठने वाले शख्स की हृदयगति पर नज़र रखेगा। संवेदक द्वारा एकत्रित किए गए आंकड़ों से डॉक्टर अपने क्लीनिक में बैठे–बैठे मरीज की जाँच कर सकेंगे।

इस नई तकनीक से दूरस्थ चिकित्सा (रिमोट मेडिकल) सेवा को और बल मिलेगा। इससे डॉक्टर अपनी क्लीनिक से ही मरीज के स्वास्थ्य की हर बरीकी को आंक सकेंगे। साथ ही खतरे की आशंका मिलने पर मरीज को फोरन हार्ट अटैक की आशंका के प्रति आगाह भी कर पाएंगे, ताकि मरीज वक्त पर अस्पताल पहुंचकर जरूरी परीक्षण करवा सकें।

- **पितृत्व का सुख देगी सूरज की रोशनी**

वैज्ञानिकों ने एक नए अध्ययन में पाया है कि धूप सेंकने से पुरुषों के बांझपन की समस्या में कमी लाई जा सकती है। पुरुष के बांझपन के लिए शुक्राणुओं की गुणवत्ता जिम्मेदार होती है, लेकिन धूप सेंकने से प्राप्त होने वाले विटामिन "डी" से शुक्राणुओं की गुणवत्ता में सुधार संभव है। वैज्ञानिकों ने करीब 340 पुरुषों पर किए अध्ययन में पाया कि धूप सेंकने से शरीर में उत्पन्न विटामिन "डी" के कारण उनके शुक्राणुओं की गुणवत्ता में भी सुधार आया।

कोपेनहेगन यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने अनियमित रूप से चुने 340 पुरुषों के शुक्राणुओं की गुणवत्ता का परीक्षण किया और पाया कि धूप सेंकने से पुरुषों के शुक्राणुओं की न केवल गति में सुधार हुआ बल्कि उनकी वेधन–क्षमता भी अधिक तीक्ष्ण हुई। वैज्ञानिकों ने शोध के दौरान सभी पुरुषों के खून में विटामिन डी लेवल की जांच की और पाया लगभग आधे लोगों के खून में विटामिन डी का लेवल अपर्याप्त था, जिसका सीधा कारण सूरज की रोशनी से दूर रहना था। वैज्ञानिक कहते हैं कि सूरज का विटामिन डी का सबसे बड़ा स्रोत है, जो शरीर में कैल्सियम और फास्फोरस स्तर को नियंत्रित करने में मदद करता है और स्वस्थ हड्डियों के निर्माण में सहायक होता है। वहीं विटामिन डी के सामान्य स्तर वाले लोगों के शुक्राणुओं की अपेक्षा अपर्याप्त स्तर वाले शुक्राणुओं में कैल्सियम अवशोषण की क्षमता भी घट जाती है। शोध के दौरान आधे से अधिक प्रतिभागियों के खून में विटामिन डी का स्तर अपर्याप्त पाया गया । इस शोध को "हयूमन रिप्रोडक्शन जर्नल" में प्रकाशित किया गया है।

- **अब आएंगी रोबोट संताने**

मानव देह का मुकाबला करता रोबोट अब अपनी ही शक्ल की संतान भी पैदा करेगा। "सेल्फ रेप्लिकेटिंग रोबोट" यानी अपने जैसे ही रोबोट पैदा कर देने की बात वैज्ञानिक अनुमानों से निकल कर हकीकत में आई है। इस अनोखी सफलता पर प्रकाश डालते हुए न्यूयार्क की कार्नेल यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक हॉडलिप्सन बताते हैं कि हालांकि यह युक्ति जैविक प्रजनन से मिलती है, मगर है अपने मशीनी अंदाज में। असल में एक बड़े रोबोट में 10 सेमी. चौकोर आकार वाले ढेरों शिशु रोबोट जुड़े रहते हैं, जिसमें वैद्युत चुंबकीय विधि के द्वारा मूल रोबोट से अलग होने और निर्धारित क्षेत्र में चहलकदमी कर फिर आ जुड़ने की क्षमता है। कंप्यूटरीकृत तकनीक से संचालित यह मशीनी रोबोट, परीक्षण के दौरान खरा उतरा है और इसने अपना आकर्षण प्रदर्शित कर दिखाया है।

प्रमुख शोधकर्ता लिप्सन अपनी टीम की इस सफलता से काफी उत्साहित हैं। उनका मानना है कि इस प्रकार के रोबोटों का प्रयोग कई कठिन कार्यों में होगा, यहाँ तक कि अंतरिक्ष में भी यह रोबोट टहल आएगा और इसके शिशुओं को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाएगा कि वह अपने जनक की काया में आई खराबियों को भी स्वयं ठीक कर देंगे और फिर उसी से आ जुड़ेंगे। यह रोबोट–विज्ञान (रोबोटिक्स) की अब तक की सबसे अनोखी सफलता है।

- **नींद में भी जली रहती है दिमाग की बत्ती**

दिनभर की थकान के बाद रात के अंधेरे में आप तो बत्ती बुझा के सो जाते हैं, लेकिन क्या जानते हैं कि आपके दिमाग की बत्ती उस समय भी जली रहती है। जी हाँ, एक नए शोध से पता चला है कि नींद में भी व्यक्ति का दिमाग चलता रहता है और नई–नई चीजें सीखता है। इज़राइल के 'वेजमान इंस्टीट्यूट' के शोधकर्ताओं ने अपने अनुसंधान में पाया है कि अगर किसी व्यक्ति को नींद में ध्वनि सुनाने के बाद विशेष तरह की खुशबू से रूबरू कराया जाए तो वह उस ध्वनि को सुनकर भी उस गंध को पहचानना शुरू कर देता है, चाहे वह नींद में हो या जागने के बाद।

अध्ययन में एक निश्चित ध्वनि के बाद गंध सुंघाई गई, ताकि लोग भी उसी तरह की प्रतिक्रिया करें, जिस तरह की गंध सूघने पर करते हैं। ध्वनि और सुगंध के मेल ने कुछ विशेष लाभ प्रस्तुत किए। नींद से उठे बिना भी दिमाग उन क्रियाओं को करता है और उस पर प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। इसे सूंघने की शक्ति के जरिए पता लगाया जा सकता है।

शोधकर्ताओं के बयान के अनुसार, नींद में भी व्यक्ति का दिमाग ठीक उसी तरह काम करता है, जैसे कि जागते वक्त करता है। जब हमें खुशबूदार गंध मिलती है तो गहरी सांस लेते हैं, लेकिन जब व्यक्ति का दुर्गंध से सामना होता है तो सांस लेने की प्रक्रिया छोटी हो जाती है। सूंघने की यह क्षमता नींद की अवस्था और जागने की अवस्था दोनों में ही रिकॉर्ड की गई। भले ही यह प्रक्रिया बहुत आसान लग रही हो, लेकिन यह क्षमता उच्च मस्तिष्क–क्षेत्रों से जुड़ी हुई है।

दूसरे प्रयोग में नींद को द्रुत नेत्र गति (रेपिड आई मूवमेंट {आर.ई.एम.}) नींद और अद्रुत नेत्र गति नींद में बांटा गया और उसके बाद दोनों उत्तेजनाओं से प्रभावित होते हैं। मगर 'ड्रीम एक्नेसिया' के चलते हम अधिकतर सपनों को भूल जाते हैं। इस स्थिति में हम अधिकतर बातें याद नहीं रख पाते। जबकि अद्रुत नेत्र गति नींद में एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मस्तिष्क एकीकरण का काम चलता है। इसलिए इसी अवस्था में व्यक्ति का दिमाग नींद में भी सीखता रहता है। यह अध्ययन 'नेचर न्यूरोसाइंस' जर्नल में प्रकाशित हुआ है।

- **हर सतह पर बैटरी**

अमेरिका में ह्यूस्टन स्थित 'राइस यूनिवर्सिटी' के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा स्प्रे पेंट विकसित किया है, जो बैटरी की तरह काम करता है। उन्होंने तांबे जैसे लिथियम आयन बैटरी मैटीरियल्स को स्प्रे करने लायक तरल रूप में बदल दिया है, इससे किसी भी सतह को बैटरी में बदला जा सकता है। शोधकर्ताओं ने कांच, स्टेनलेस स्टील, सिरेमिक टाइल, लचीली पॉलिमर शीटों, यहां तक कि एक मग पर इस स्प्रे का सफल प्रयोग

किया है। इस तकनीक को अभी बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां है। यह तकनीक महंगी है और लिथियम आयन बैटरी मैटीरियल्स को पेंट में बदलना जोख़िम से भरा हुआ है, लेकिन शोधकर्ताओं को उम्मीद है कि बैटरी के लिए कम विषाक्तता वाले रसायन खोजे जा सकते हैं। वर्तमान कमियों के बावजूद इस तकनीक का भविष्य संभावनाओं से भरा हुआ है। बैटरी से चलने वाली हर चीज़ इससे प्रभावित हो सकती है, जिनमें मोबाइल फोन, कैमरा और इलेक्ट्रिक कार सम्मिलित हैं।

- **हैकर आपके दिमाग में भी घुस सकते हैं**

आप मानें या न मानें मगर वैज्ञानिकों का दावा है कि मनुष्य के मस्तिष्क में सेंध लगाना बहुत आसान है। उन्होंने कहा है कि कुछ धन व्यय करके ही मिल जाने वाली एक तकनीक से मनुष्य का मस्तिष्क 'हैक' करके उसमें मौजूद उसके बैंक अकाउंट की अहम जानकारियों को प्राप्त किया जा सकता है।

जेनेवा स्थित 'यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड' और वर्कले की 'यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया' के शोधकताओं के दल ने 'ऑफ–द–शेल्फ इमोटिव ब्रेन–कंप्यूटर इंटरफेस (बीसीआई)' की मदद से मस्तिष्क हैक करने की तकनीक का प्रदर्शन किया है। यह तकनीक कुछ धनराशि में तैयार हो जाती है। इस प्रयोग में शामिल लोगों को इमोटिव बीसीआई हैड पीस पहनने को दिया गया और कंप्यूटर के सामने बैठाया गया। आश्चर्य कि कंप्यूटर पर इन लोगों के मस्तिष्क में दर्ज जगहों के नक्शे, बैंक अकाउंट की जानकारियां और कार्डों के पिन नंबरों के प्रतिबिंब सामने आ गए।

- **छत पर उगाई धान की फसल**

चीन के एक किसान ने ऐसा अद्भुत कारनामा कर दिखाया है जो भविष्य की खेती का आधार बन सकता है। इस किसान ने अपने घर की छत पर सीजन की शुरूआत में ही धान की फसल उगाने में सफलता पाई है। इसके लिए उसने अपने 133 वर्ग मीटर छत को खेती–योग्य भूमि में तब्दील कर दिया। उसके बाद वैज्ञानिक विधि से इसमें धान की फसल बोई और 100 किलो चावल पैदा किया। यह तरीका भविष्य के किसानों के लिए इस लिहाज़ से क्रांतिकारी हो सकता है क्योंकि इस तरह से फसल उगाने में परंपरागत तरीके को अपनाने की जरूरत नहीं पड़ती और न ही खेत की आवश्यकता होती है। किसान की सफलता ने आस–पास के लोगों को हैरान कर दिया है। इसके साथ ही किसान से इस नई विधि को सीखने के लिए लोगों का उसके घर तांता लगा हुआ है।

- **मंगल पर गूंजी इंसान की आवाज़**

मंगल ग्रह पर पहली बार इंसान की आवाज़ गूंजी। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' ने लाल ग्रह पर जीवन की तलाश में जुटे 'क्यूरोसिटी' अंतरिक्ष यान तक अपना बधाई संदेश पहुंचाया। कुछ देर बाद क्यूरोसिटी की ओर से भी पृथ्वी पर इस संदेश की रिकॉर्डिंग वापस भेजी गई। अंतरिक्ष शोध के क्षेत्र में इस कदम को बड़ी उपलब्धि के तौर पर देखा जा रहा है।

नासा प्रमुख चार्ल्स बोल्डेन के मुताबिक क्यूरोसिटी पर इंसान की आवाज़ भेजने के लिए रेडियो तरंगों का सहारा लिया गया। कुछ देर बाद ये तरंगे मंगल की परिक्रमा कर रहे दो उपग्रहों के रास्ते पृथ्वी पर मौजूद नासा के डीप स्पेस नेटवर्क पर वापस आईं। नासा के मंगल मिशन के मुख्य दूरसंचार इंजीनियर चैड एडवर्ड ने कहा, "इंसान अभी सशरीर तो मंगल की सतह पर नहीं पहुंच सका है, लेकिन हमारी आवाज़ लाल ग्रह तक का सफर तय करने में कामयाब रही है। यह छोटा कदम है, लेकिन अंतरिक्ष शोध की दिशा में बड़ी उपलब्धि साबित होगा।

उन्होंने बताया कि मंगल पर नासा प्रमुख की आवाज़ में रिकॉर्ड किया गया बधाई संदेश भेजा गया था। इसमें बोल्डेन कहते हैं, "क्यूरोसिटी पृथ्वी के लिए बेहद फायदेमंद साबित होगा। यह नई पीढ़ी के वैज्ञानिकों और अन्वेषणकर्ताओं की प्रेरणा बनेगा, क्योंकि इससे भविष्य में मंगल पर मानव मिशन भेजने का कार्य प्रशस्त होगा।" एडवर्ड ने बताया कि क्यूरोसिटी ने मंगल की कई चौंकाने वाली तस्वीरें भी भेजी हैं, जिनके अध्ययन से पता चलता है कि लाल ग्रह की

चट्टानों के टीले में नुकीली झुकावदार परतें हैं। ये परतें इस बात का पक्का संकेत हैं कि मंगल के दक्षिणी अक्षांश के भूमध्यक्षेत्र स्थित, गाले क्रेटर की बनावट में नाटकीय बदलाव हुए हैं।

- **सैनिकों के लिए तैयार तापरोधी मेकअप**

वैज्ञानिकों ने एक ऐसा मेकअप तैयार किया है जो सैनिकों को दुश्मन की नज़र से बचाएगा और सुरक्षा कवच का भी काम करेगा। यह मेकअप सैनिकों को बम विस्फोट होने के बाद पैदा हुई जबरदस्त गर्मी से सुरक्षित रखेगा। इस लेप से दमकल कर्मियों को भी जान बचाने में मदद मिलेगी। 'यूनिवर्सिटी ऑफ सदर्न मिसीसिपी' के शोधकर्ताओं का कहना है कि इससे 600 डिग्री सेल्सियस के ताप पर भी त्वचा सुरक्षित रहती है। हालांकि तापीय विस्फोट महज दो सेकंड तक ही रहता है, लेकिन इससे उत्सर्जित ताप चेहरे, हाथ और शरीर के अन्य खुले भागों को झुलसाने के लिए पर्याप्त होता है।

- **जेब में मोड़कर रखा जा सकेगा मोबाइल**

आने वाले समय में संभव है कि आप अपने मोबाइल को मोड़कर अपनी जेब में रख सकें। दरअसल, 'कोरिया ऐडवान्स्ड इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी' के वैज्ञानिकों ने इस बैटरी को बनाने का दावा किया है। इस बैटरी की ख़ासियत यह है कि इसे आसानी से मोड़ा जा सकेगा।

'डेली मेल', लंदन की रिपोर्ट के अनुसार इस बैटरी के प्रयोग से जहां मोबाइल फोन ज्यादा क्षमता वाले बन सकेंगे। वहीं उन्हें संभालना भी काफी आसान हो जाएगा। प्रमुख शोधकर्ता प्रोफेसर 'कियोन जी ली' ने इस बैटरी को "हाई परफॉरमेंस फ्लैक्सिबल ऑल–सॉलिड–स्टेट बैटरी" नाम दिया है। इस बैटरी के आने से उम्मीद की जा सकती है कि मोबाइल, टेबलेट और ई–बुक का इस्तेमाल करने वालों को काफी सहूलियत होगी और वे इसे मोड़कर अपनी जेब में भी रख सकेंगे।

- **कृत्रिम आंख से जीवन में हुआ उजाला**

दुनिया की पहली बायोनिक आंख की मदद से नेत्रहीन आस्ट्रेलियाई महिला की आंखों में रोशनी लौट आई। 'डायने एशवर्थ' ऐसी पहली मरीज़ हैं जिन्हें सर्जरी के जरिए यह उपकरण लगाया गया है। यह सर्जरी मई महीने में "रॉयल विक्टोरियन आई एंड इयर" अस्पताल में की गई थी।

बायोनिक आंख में नेत्रदोष से ग्रसित लोगों के रेटिना में इलेक्ट्रोड डाले जाते हैं। ये इलेक्ट्रोड तंत्रिका कोशिकाओं को संकेत भेजते हैं। ये संकेत सामान्य दृष्टि वाले लोगों में प्राकृतिक रूप से पैदा होते हैं। स्वस्थ हो जाने के बाद 'डायने' ने कहा, "अचानक मुझे रोशनी दिखाई पड़ी, यह शानदार अनुभव था। मेरी आंखों के सामने रोशनियों के आकार में लगातार बदलाव हो रहे थे।"

- **मंगल ग्रह पर हिमपात के प्रमाण**

वैज्ञानिकों को मंगल ग्रह पर कार्बन डाईऑक्साइड हिमपात के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के 'मार्स रिकॉनिसेन्स ऑर्बिटर (एम.आर.ओ.)' से प्राप्त आंकड़ों से इसकी जानकारी मिली है। 'नासा' ने एक बयान में कहा है कि इससे हमारे सौरमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के हिमपात की एकमात्र घटना के बारे में पता चला है। जमी हुई कार्बन डाइऑक्साइड को 'सूखी बर्फ (ड्राई आइस)' कहा जाता है। इसके जमाने के लिए 0° से 125° डिग्री सेल्सियस नीचे ताप की जरूरत होती है। यह पानी के जमने के लिए जरूरी ताप से बहुत नीचे है। मंगल पर मिले 'ड्राइ आइस' के प्रमाण ने वैज्ञानिकों को इस बात के प्रति आगाह किया है कि मंगल ग्रह का कुछ हिस्सा पृथ्वी जैसा प्रतीत होते हुए भी लाल ग्रह पृथ्वी से बहुत भिन्न है। 'नासा' का कहना है कि हिमपात की यह घटना लाल ग्रह के दक्षिणी ध्रुव में जाड़े के समय हुई नासा के मुताबिक मंगल के वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड कैसे जमा हुई यह सवाल अभी बना हुआ है। नासा की रिपोर्ट 'जर्नल ऑफ जियोफिजिकल रिसर्च' में प्रकाशित हुई है।

- **मौसम का हाल बताती तितलियाँ**

जरूरी तो नहीं कि सारे प्रयोग और शोध कोई वैज्ञानिक ही करे। वैसे भी अपनी खास रिसर्च और प्रोजेक्ट में जुड़े वैज्ञानिकों के पास हर जगह हर माहौल को भांपने या उस पर रिसर्च करने का वक्त नहीं है। ऐसे में नागरिक वैज्ञानिक (सिटिजन साइंटिस्ट) की भूमिका काफी अहम हो जाती है।

'सिटिजन साइंटिस्ट' यानी ऐसे लोग जो अपने आस–पास के माहौल पर इस खास प्रोफेशन से संबंध न होने पर आंकड़े जुटाकर कुछ निष्कर्ष पेश करते हैं। 'सिटीजन साइंटिस्ट' किसी वैज्ञानिक के मुकाबले ज्यादा बड़े पैमाने पर डाटा एकत्रित कर लेते हैं। खासकर पर्यावरण संबंधी मामलों में वे अधिक सफल साबित होते हैं। हाल ही में 'नेचर क्लाइमेंट चेंज' जर्नल में प्रकाशित एवं रिसर्च पेपर से तो कम–से–कम यही साबित होता है। दरअसल लंदन के कुछ शौकिया बटरफ्लाई वाचर्स द्वारा तितलियों के बारे में जुटाए गए आंकड़ों को देखकर वैज्ञानिक भी हैरान हैं। इन्हीं आंकड़ों के आधार पर हावर्ड यूनिवर्सिटी की इन्वॉयरमेंटल लैब के वैज्ञानिकों ने पाया कि ब्रिटेन के नार्थ–ईस्टर्न स्टेट में जहां गर्म मौसम की तितलियां कभी दिखाई नहीं देती थी, उन्हीं तितलियों की पिछले दो दशकों में वहां भरमार हो गई है।

इसी दौरान कई स्थानीय जातियों की तितलियां जैसे 'अटलांटिस' और 'एफ्रोडाइट फ्रिटीलरीज' इत्यादि अब दुर्लभ होती जा रही हैं। वैज्ञानिक इसके लिए जलवायु परिवर्तन को जिम्मेदार मान रहे हैं। प्रमुख शोधकर्ता ग्रेग ब्रीड के अनुसार गर्म हो रही जलवायु के कारण पिछले करीब 19 वर्षों में मेसाचुसेट्स की बटरफ्लाई कम्यूनिटी में काफी बदलाव देखने को मिल रहे हैं।

○○○

18

कॉपरनिकस : प्राचीन काल का महान वैज्ञानिक

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

प्राचीन काल के जिन वैज्ञानिकों ने अपने शोधों एवं कृतियों द्वारा पूरे संसार में प्रसिद्धि प्राप्त की उनमें कॉपरनिकस का नाम अग्रगण्य है। उनका पूरा नाम कॉपरनिकस निकोलस था। इनका जन्म 14 फरवरी सन् 1473 को पोलैंड में विस्तुला नदी के किनारे अवस्थित टौरन नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता टौरन के प्रमुख व्यापारियों में गिने जाते थे। कॉपरनिकस अपनी प्रारंभिक शिक्षा टौरन में ही प्राप्त करने के बाद उच्च शिक्षा हेतु सन् 1491 में क्रैकाउ विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। इस विश्वविद्यालय में उसका संपर्क वोजसियेक बुडेजविस्की से हुआ जो उस काल के दौरान महान गणितज्ञ माने जाते थे। वोजसियेक बुडजेविस्की टॉलेमी द्वारा प्रतिपादित भूकेंद्रीय प्रणाली (जियोसेंट्रिक सिस्टम) के प्रबल समर्थक थे। कॉपरनिकस बुडजेविस्की से काफी अधिक प्रभावित हुए, परंतु संयोगवश कॉपरनिकस को सन् 1494 ई. में अपने घर लौटना पड़ा क्योंकि उसके चाचा ल्युकास वैक्जेनरोड उसी वर्ष इर्मेलैंड (वार्मिया) के विशप निर्वाचित हुए थे तथा वे अपने भतीजे कॉपरनिकस को फ्रौमवर्ग के पादरी संघ का सदस्य बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने कॉपरनिकस को प्रशिक्षण हेतु इटली भेज दिया। सन् 1497 ई. में कॉपरनिकस बोलेग्ना स्थित नेशियो जर्मिनोरियम के छात्र बने। वह यहाँ लगभग साढ़े तीन वर्षों तक ग्रीक भाषा का अध्ययन करते रहे। इस दौरान वे प्लैटो की पुस्तकों से परिचित हुए। धीरे–धीरे वे फेरारा के तत्कालीन महान खगोलविद् डोमेनिको नोवारा के निकट संपर्क में आए तथा उसके सहायक के रूप में काम करने लगे। हालांकि डोमेनिको नोवारा उम्र में कॉपरनिकस से काफी बड़े थे, फिर भी वह उसे अपने मित्र के समान समझते थे तथा उसी प्रकार से बर्ताव करते थे। डोमेनिको नोवारा से प्रोत्साहन पाकर कॉपरनिकस खगोलीय पिंडों के अध्ययन में तल्लीन हो गए। इस अध्ययन के फलस्वरूप उन्होंने कई नई बातों का पता लगाया तथा नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।

सन् 1500 ई. की बसंत ऋतु में कॉपरनिकस रोम गए तथा वहाँ विद्वत समुदाय के समक्ष गणित के विभिन्न पहलुओं पर वक्तव्य दिया। सन् 1497 ई. में ही कॉपरनिकस फ्रौमवर्ग के पादरी संघ के सदस्य के रूप में निर्वाचित हो चुके थे। सन् 1501 ई. में उन्होंने इस संघ के सदस्य के रूप में एक कैथेड्रल में योगदान देना शुरू कर दिया। परंतु कुछ ही समय बाद उन्होंने विशेष छुट्टी ली तथा अध्ययन हेतु पुनः इटली लौट गए। उन्होंने वहाँ पादुआ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तथा कानून एवं मेडिकल की पढ़ाई शुरू की। इसी बीच 31 मई 1503 ई. को उन्हें फेरारा में डॉक्टर ऑफ कैनन लॉ की डिग्री प्रदान की गई। पादुआ में उन्होंने लगभग चार वर्षों का समय व्यतीत किया। इस प्रकार बोलोग्ना तथा पादुआ में रह कर उन्होंने अनेक विषयों की अच्छी जानकारी प्राप्त की। ऐसे विषयों में शामिल थे– गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, कानून तथा अध्यात्म। कॉपरनिकस सन् 1503 ई. में ही पोलैंड वापस लौट गए। पोलैंड वापस लौटने के बाद वे क्रैकाउ नामक स्थान पर अपने चाचा के परामर्शदाता के रूप में काम करने लगे। उनके चाचा उस समय अर्मिलैंड के एक प्रखुख विशप माने जाते थे। सन् 1512 ई. में उनके चाचा की मृत्यु हो गई। उसके बाद कॉपरनिकस

फ्रौमबर्ग में कैथेड्रल चाप्टर के प्रतिनिधि के रूप में काम करने लगे। इस दौरान वे अपने चिकित्सा विज्ञान की जानकारी का उपयोग गरीब रोगियों की चिकित्सा हेतु करने लगे।

इटली से पोलैंड वापस लौटने के बाद कॉपरनिकस ने खगोल विज्ञान से संबंधित अनेक प्रकार के अध्ययन एवं शोध किए। धीरे–धीरे उनका नाम एक महान खगोलविद् के रूप में प्रसिद्ध हो गया। यही कारण था कि सन् 1514 ई. में जब लैटेरन काउंसिल द्वारा कैलेंडर में सुधार की बात पर विचार किया जा रहा था तो कॉपरनिकस को एक परामर्शदाता के रूप में शामिल होने का आमंत्रण भेजा गया। परंतु कॉपरनिकस ने इस आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि वह अभी सूर्य तथा चंद्रमा की गति की सही जानकारी प्राप्त नहीं कर पाए हैं, अतः कैलेंडर सुधार में कोई परामर्श देना उचित नहीं होगा। धीरे–धीरे उन्होंने सूर्य, चंद्रमा तथा ग्रहों के भ्रमण पथों के बारे में काफी गहराई से अध्ययन किए। उन्होंने सन् 1497 ई. से 1529 ई. के बीच अपने द्वारा किए गए खगोलीय अध्ययनों से संबंधित 27 शोध पत्र प्रकाशित किए।

कॉपरनिकस ने अपने अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर टॉलेमी द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धांतों का खंडन किया। टॉलेमी ने जो सिद्धांत प्रतिपादित किए थे, वे सिर्फ उसके द्वारा किए गए अध्ययन पर ही आधारित नहीं थे, अपितु कुछ पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों के विचारों का भी उनमें समावेश किया गया था। ये सभी सिद्धांत भूकेंद्रीय ब्रह्मांड की अवधारणा पर आधारित थे। ईसा बाद 16वीं शताब्दी आते–आते भूकेंद्रीय ब्रह्मांड की अवधारणा गलत साबित हो चुकी थी। कॉपरनिकस के मन में एक बात आई कि यदि टॉलेमी द्वारा प्रतिपादित भूकेंद्रीय ब्रह्मांड की अवधारणा सही नहीं है तो फिर उस अवधारणा द्वारा खगोलीय पिंडों की गति की व्याख्या कैसे होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इस अवधारणा में कोई मूल त्रुटि है। इसका पता करने के लिए उन्होंने कुछ प्राचीन यूनानी दार्शनिकों द्वारा व्यक्त विचारों एवं सिद्धांतों का अध्ययन किया जिनसे पता चला कि कुछ दार्शनिकों ने सूर्य केंद्रीय (हीलियो सेंट्रिक) ब्रह्मांड की अवधारणा प्रस्तुत की थी। इस सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी को ही सूर्य का चक्कर लगाते बतया गया था। शुरु–शुरु में कॉपरनिकस को यह सिद्धांत हास्योस्पद लगा। परंतु जब उन्होंने गहराई से विचार किया तो यह परिकल्पना युक्ति संगत मालूम पड़ी तथा इस अवधारणा से वे पूर्णतः संतुष्ट हो गए। परंतु बहुत लंबे समय तक वे इस अवधारणा को प्रकाशित कराने का साहस नहीं जुटा पाए। अंत में उनके कुछ मित्रों विशेष कर उनके शिष्य जॉर्ज जोचिम राटिकस के प्रयास से सन् 1543 ई. में कॉपरनिकस द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा सका। इस पुस्तका का नाम था– 'डि रिवोलुनिबस और्बियम सेलेसियम'।

उपर्युक्त पुस्तक हालाँकि प्रकाशन के तुरंत बाद वैज्ञानिकों को संतोषप्रद नहीं मालूम पड़ी, परंतु धीरे–धीरे कॉपरनिकस के सिद्धांत वैज्ञानिकों के बीच लोकप्रिय होते गए तथा इन सिद्धांतों ने खगोल विज्ञान के विकास में आधार स्तंभ का काम किया तथा कालक्रम में वे बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण साबित हुए। ब्रिटेन में कॉपरनिकस के सिद्धांतों का प्रचार सर्वप्रथम थॉमस डिग्गेस द्वारा किया गया। बाद में केपलर तथा गैलीलियो ने कॉपरनिकस के सिद्धांत का खुलकर समर्थन तथा प्रचार किए।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रकाशन के कुछ समय पूर्व कॉपरनिकस ने सन् 1503 ई. में अपने द्वारा लिखित एक पांडुलिपि वैज्ञानिकों के बीच वितरित की थी जिसका शीर्षक था 'कमेंटारियोलस'। इस पांडुलिपि में उन्होंने अपने विचारों का सारांश प्रस्तुत किया था। परंतु इस पांडुलिपि में कोई चित्र नहीं था और न कोई गणना थी जिसके कारण तत्कालीन वैज्ञानिकों द्वारा इस पर कोई अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई थी। परंतु इस पांडुलिपि में समाविष्ट तथ्यों के संबंध में एक व्याख्या रोम में जोहान अलब्रेक्ट विडमैंस्टाड द्वारा दी गई थी। पोप क्लेमेंट VII ने इस व्याख्या को सुनकर कॉपरनिकस के सिद्धांत को अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा इसके प्रकाशन का आदेश दिया।

सन् 1540 ई. में राटिकस को अनुमति प्रदान की गई कि वे कॉपरनिकस द्वारा तैयार की गई पांडुलिपि को न्यूरेमबर्ग (जर्मनी) ले जाकर मुद्रित कराएं। परंतु न्यूरेमबर्ग में राटिकस को लूथर मेलांक्थन तथा अन्य पोंगा पैथियों द्वारा इस पांडुलिपि के मुद्रण के विरोध का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप राटिकस न्यूरेमबर्ग से वापस लौट आया तथा मुद्रण हेतु लाइपजिग (जर्मनी) गया। वहाँ इस पांडुलिपि के मुद्रण का भार राटिकस ने जोहान स्कौनेर तथा ऐंड्रियास ओसियेंडर को सौंप दिया। परंतु ओसियेंडर को डर था कि इस पांडुलिपि के मुद्रण के लिए उसे समाज में विरोध का सामना करना पड़ेगा। अतः उसने मुद्रण पूर्व अपनी ओर से एक भूमिका जोड़ दी जिसमें बताया गया कि वस्तुतः सूर्य केंद्रीय ब्रह्मांड की अवधारणा ग्रहों के विचरण की संतोषजनक व्याख्या करने हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

कॉपरनिकस ने ब्रह्मांड की जो अवधारणा प्रस्तुत की उसके अनुसार केंद्र में सूर्य था। उसके बाद बढ़ती दूरी के क्रम में बुध, शुक्र तथा पृथ्वी स्थित है। पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा को चक्कर लगाते बताया गया था। पृथ्वी के बाद मंगल, मंगल के बाद बृहस्पति तथा उसके बाद शनि की कक्षाएं थी। उसके बाद स्थिर तारों से युक्त गोला था।

कॉपरनिकस द्वारा 'डि रिवोलुनिबस' नामक ग्रंथ छह अध्यायों में लिखा गया था। प्रथम अध्याय में बताया गया था कि पृथ्वी गोल है तथा विचरणशील है। दूसरे अध्याय में रवि मार्ग (एक्लिप्टिक) की चर्चा की गई थी। तीसरे अध्याय में अयन तथा सूर्य की गति का विवरण दिया गया था। चौथे अध्याय में चंद्रमा तथा उसकी गति की चर्चा की गई थी। पांचवें तथा छठे अध्यायों में ग्रहों की गति पर प्रकाश डाला गया था।

कॉपरनिकस की मृत्यु 24 मई 1543 ई. को फ्रौनबर्ग में 70 वर्ष की अवस्था में हुई। हालांकि कॉपरनिकस को इस संसार से कूच किए हुए लगभग पौने पाँच सौ वर्षों का लंबा समय गुजर गया, परंतु उनके द्वारा प्रस्तुत किए सिद्धांतों ने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का काम किया जिसके फलस्वरूप विज्ञान को एक नई दिशा मिली।

ooo

लेखक-परिचय

1. शिवप्रसाद, शीतल के. राधाकृष्णन,
नरेश कुमार सिंह एवं सुधा कन्नौजिया
पर्यावरण विज्ञान एवं जलवायु समुत्थानशील कृषि
अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

2. राधव शैलेंद्र कुमार सिंह
भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान
पाषाण रोड, पुणे – 411008, महाराष्ट्र

3. डॉ. आर. एस. सेंगर एवं अमित कुमार
टिशू कल्चर लैब, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग
सरदार वल्लभभाई पटेल, कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, मेरठ – 250110

4. डॉ. दीपक कोहली
5/105, विपुल खंड, गोमती नगर
लखनऊ – 226010

5. डॉ. विनय कुमार मिश्र, डा. डी. के. द्विवेदी
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (मध्यप्रदेश)

6. डॉ. यू. एस. मिश्रा
जैवप्रौद्योगिकी विभाग
नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद – 224229

7. कौशलेंद्र प्रताप सिंह एवं अणिमा वशिष्ठ
4, प्रोफेसर्स कॉलोनी, राजकीय रजा पी. जी.
कॉलेज, रामपुर – 244901, उ.प्र.

8. दीपक एस. भदौरिया
अनुसंधान अध्येता, सुंदरेशन स्कूल ऑफ ऐनीमल
हस्बैंडरी एंड डेअरींग, इलाहाबाद – 2110071

9. डॉ. दिनेश मणि
35/3, जवाहरलाल नेहरू मार्ग
जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद – 211002

10. डॉ. एन. के बौहरा
प्लॉट नं. 389, गली नं.–10
मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड
जोधपुर (राजस्थान)

11. डॉ. परशुराम शुक्ल
आहवरी फ्लैट नं. 20, पांचवीं मंजिल
प्लेटिनम प्लाजा, टी. टी. नगर
भोपाल ' 462003

12. डॉ. दुर्गादत्त ओझा
"गुरूकृपा", ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर – 342001

12. डॉ. राजुलाल भारद्वाज
उद्यान विशेषज्ञ कृषि विज्ञान केंद्र
सिरोही – 307001, राजस्थान

13. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक, मयुर विहार, ई–ब्लाक
शास्त्रीनगर, मेरठ – 250004, उ.प्र.

14. दीपक गुप्ता
मकान नं. 1 टीए–2, कृष्णा भवन
आदर्श ब्लॉक (4) विज्ञान नगर
कोटा राजस्थान – 324005

15. डॉ. नीरजा श्रीवास्तव
क्वार्टर नं.–20, विज्ञान नगर
कोटा, राजस्थान – 324005

16. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
राजेंद्र नगर हाउसिंग कॉलोनी
जमगोड़िया, चास, जिला बोकारो – 827013

○○○

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियां

क. बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह

विज्ञान खंड 1, 2 (संशोधित संस्करण)	174.00	इंजीनियरी (सिविल, विदयुत्, यांत्रिक)	340.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड (1, 2)	292.00	पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00	प्राणि विज्ञान	311.00
आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50	मुद्रण इंजीनियरी	48.00

ख. विषयवार शब्दावलियाँ (अंग्रेजी-हिंदी)

भौतिकी		**वाणिज्य**	
अर्धचालक शब्दावली	140.00	पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
गृहविज्ञान		वाणिज्य शब्दावली	259.00
गृहविज्ञान शब्द-संग्रह	60.00	**कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी**	
रेशम शब्द-संग्रह	50.00	कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
जीव विज्ञान		**इंजीनियरी**	
वानिकी शब्द-संग्रह	447.00	इलेक्ट्रॉनिक शब्दावली	349.00
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00	**भूगोल**	
कोशिका तथा अणु जैविकी शब्द-संग्रह	348.00	जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
प्रशासन		प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00	**भू-विज्ञान**	
प्रशासनिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00	अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
रसायन विज्ञान		आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
रसायन शब्द संग्रह	592.00	सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	55.00	भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00

भू-भौतिकी शब्दावली	67.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
जीवाश्म विज्ञान शब्दावली	129.00
शैल विज्ञान शब्दावली	82.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह	15.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
प्रसारण तकनीकी शब्दावली	310.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
आयुर्विज्ञान	
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
औषधि प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली	273.00
राजनीति	
संसदीय कार्य शब्दावली	130.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00

ग. विषयवार पारिभाषा कोष (अंग्रेजी-हिंदी)

नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
पुरातत्व विज्ञान	
पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला एवं संगीत	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	28.55
जैविकी (जीवविज्ञान)	
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	80.50
रसायन	
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
वाणिज्य	
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.70
अर्थशास्त्र	
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
इंजीनियरी	
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	61.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश-I	84.00
भूगोल	
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
भू-विज्ञान परिभाषा कोश	63.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
शैल विज्ञान परिभाषा कोश	153.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
कृषि	
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00

1927 HRD/14—11A

विधि	
अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
प्रबंध विज्ञान	
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश	170.00
गणित	
गणित परिभाषा कोश	203.00
दर्शन शास्त्र	
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
भारतीय दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश खंड 3	136.00
भौतिकी	
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
प्राणि विज्ञान	
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00

घ. क्षेत्रीय भाषा शब्दावलियां

आयुर्विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	450.00
राजनीति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	186.00
इतिहास शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	404.00
गणित शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	189.00
प्राणिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	205.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	162.00
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	108.00
अर्थशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	183.00
रसायन शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
वनस्पति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	208.00
शिक्षा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	390.00
दर्शन शास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	61.00
भौतिक विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	203.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	515.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	185.00
भू-विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	306.00
शिक्षा शब्द संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	97.00
समाजशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	118.00
राजनीतिक विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	211.00
पुरातत्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	157.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	35.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	720.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	652.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	417.00

च. संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समुद्री यात्राएँ	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
कोयला (एक परिचय)	294.00
कोयला (एक परिचय) परिवर्धित संस्करण	425.00
रत्न विज्ञान (एक परिचय)	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.25
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00

1927 HRD/14—11B

2 दूरिक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एंव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00
पराज्यामितीय फलन	90.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह	100.00
सूक्ष्म तरंग इंजीनियरी	470.00
लैटर प्रैस मुद्रण	270.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु	68.00
बाल मनोविकास	58.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00
मृदा एवं पादप पोषण	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	176.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
भविष्य की आशा : हिंदी महासागर	154.00
भारतीय कृषि का विकास	155.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
इस्पात परिचय	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
प्राकृतिक खेती	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल	167.00
मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00
पृथ्वी : उदभव और विकास	86.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00
द्रवचालित मशीन	66.50
भारत के सात आश्चर्य	335.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम	360.00
पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन	403.00
मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन	प्रकाशनाधिन

○○○

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग का/छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, शहाजहां रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

MGIPRRND—1927 HRD/14—700 Copies.

© भारत सरकार
नियंत्रक प्रकाशन

84-85 पी.सी.एस.टी.टी. (1 - 6) 2013

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India
Printed by the Manager, Government of India Press, Ring Road, Maya Puri, New Delhi - 110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi - 110054